प्राचीन भारत में जलविज्ञानीय ज्ञान

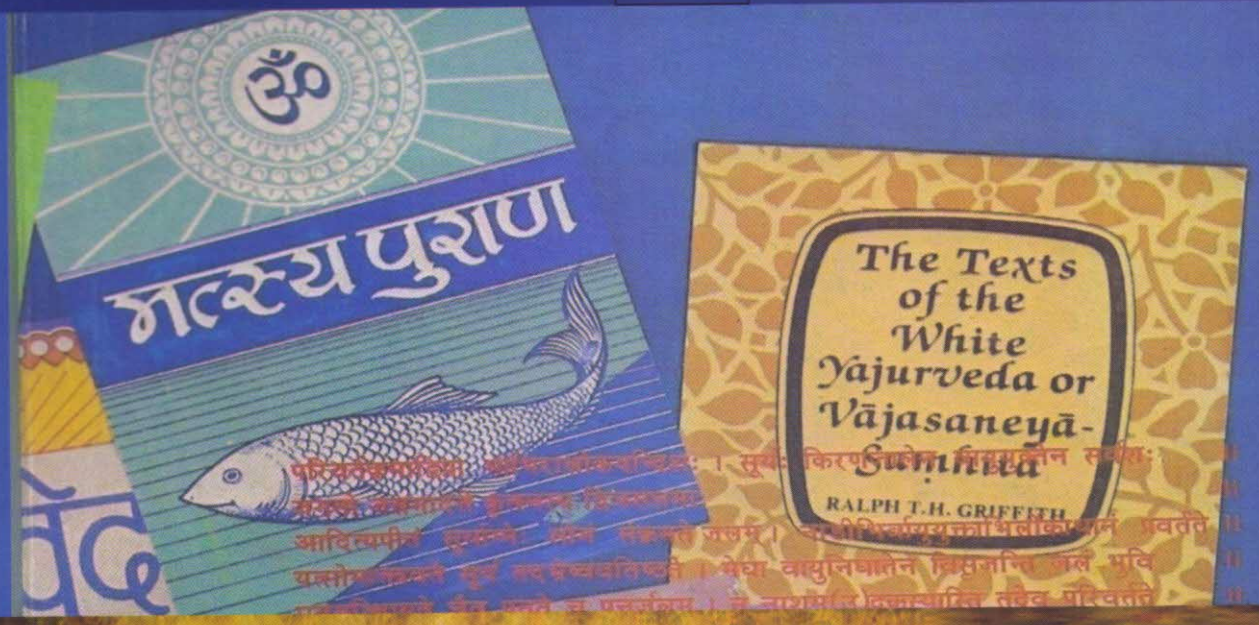

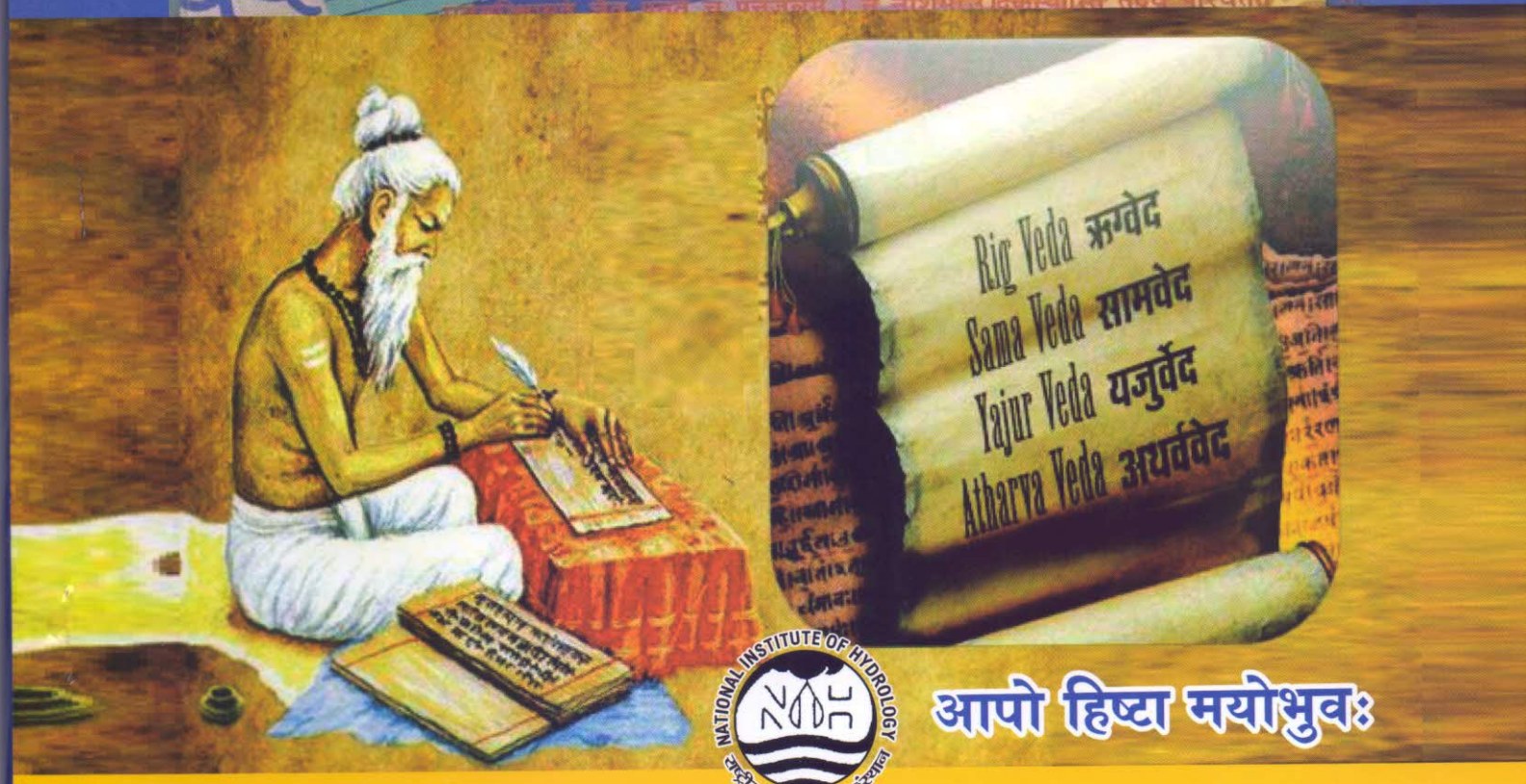

आपो हिष्टा मयोभुवः

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की

जलविज्ञान भवन,

रुड़की–247667 (उत्तराखंड), भारत

जनवरी, 2019

प्राचीन भारत में जलविज्ञानीय ज्ञान

(द्वितीय संस्करण)

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान

(जल संसाधन, नदी विकास तथा गंगा संरक्षण मंत्रालय)

जलविज्ञान भवन

रुड़की-247 667 (उत्तराखंड), भारत

जनवरी, 2019

नदी को देवी स्वरूपा मानते हुए उसके आह्वान के लिए श्लोक

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिंधु कावेरि जलेऽस्मिन सन्निधिं कुरु।।

भावार्थ: हे गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु और कावेरी, कृपया अपनी उपस्थिति से इस जल को समृद्ध करें जिसमें मैं स्नान कर रहा हूं ।

गंगा सिंधु सरस्वति च यमुना गोदावरि नर्मदा ।
कावेरि शरयू महेन्द्रतनया चर्मण्वती वेदिका ।।
क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता जया गण्डकी ।
पूर्णा:पूर्णजलै:समुद्रसहिता:कुर्वन्तु मे मंगलम् ।।

भावार्थ: गंगा, सिंधु, सरस्वती, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी, शरयू, महेन्द्रत्न, चम्बल, वेदिका, क्षिप्रा, वेत्रवती, मुख्य रूप से महासुरनदी, जया और गंडकी नदियाँ पवित्र और निरपेक्ष हों तथा मुझ पर परोपकार करें ।

नमामि गंगे तव पादपंकजं सुरासुरैर्वन्दितदिव्यरूपाम् ।
भुक्तिं च मुक्तिं च ददासि नित्यं भावानुसारेण सदा नराणाम् ।

भावार्थ: हे माँ गंगा, सभी सांसारिक आनन्द, सुखों और मोक्ष की आराधना के भाव के विभिन्न स्तरों के अनुसार, सभी देवी-देवता और आपके पावन चरणों की पूजा करते हैं, मैं भी आपके पवित्र चरणों को अपने हृदय में अर्पित करता हूँ।

प्रस्तावना (द्वितीय संस्करण)

मनुष्य के लिए जल सिर्फ एक पदार्थ नहीं है जो जीवन का निर्वाह करता है । जल प्रबंधन एक मौलिक घटक है जिस तरह से लोग दुनिया की कल्पना करते हैं और अपने विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं । भारत में जलविज्ञानीय ज्ञान में कई सहस्राब्दियों के ऐतिहासिक पदचिह्न हैं । दुनिया भर की कई प्राचीन सभ्यताओं की तरह, जल के प्रबंधन और उपयोग की आवश्यकता ने प्राचीन भारत में भी जलविज्ञान के विकास को बढ़ावा दिया । प्राचीन इतिहास के साक्ष्य भारतीयों द्वारा 5000 वर्ष पूर्व उत्पन्न किए गए जलविज्ञानीय ज्ञान को एक अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं । प्राचीन भारतीय शास्त्रों में जलविज्ञानीय प्रक्रियाओं के कई पहलुओं पर गहन चर्चा की गई है, उस दृष्टिकोण से जैसा कि आज हम उन्हें समझते हैं ।

इस रिपोर्ट में बताया गया है कि प्राचीन भारत में सिंधु घाटी सभ्यता से पूर्व के दिनों से जल विज्ञान का ज्ञान व्यापक था और इन पर वेदों, पुराणों अर्थशास्त्र, अष्टाध्यायी, वृहत् संहिता, रामायण, महाभारत, मेघमाला, मयूरचित्रा, जैन और बौद्ध तथा कई अन्य प्राचीन साहित्यों में गहन चर्चा की गई है । हालाँकि, इसे आधुनिक समय तक दुनिया के सामने ढूंढकर लाया जाना है । इस रिपोर्ट में प्राचीन भारतीय जलविज्ञानीय ज्ञान को भारतीय और विश्व समुदाय के सामने प्रस्तुत करने का यथार्थ प्रयास किया गया है । इस रिपोर्ट का एक विशेष महत्व है, खासकर जनसंख्या वृद्धि के युग में और जब पर्यावरणीय क्षरण तथा जलवायु परिवर्तन के कारण जल-संबंधी चरम सीमा तथा संकट बढ़ रहे हैं । जलवायु परिवर्तन की घटना का जल और खाद्य सुरक्षा पर भी अधिक प्रभाव पड़ेगा । इसी समय, विभिन्न जल उपयोगों के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है और इस प्रकार स्थायी विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को प्राप्त करने के लिए जल संसाधन प्रबंधन पर अधिक बल दिए जाने की आवश्यकता है । इस रिपोर्ट में वर्णित प्राचीन जल प्रौद्योगिकियों को न केवल ऐतिहासिक संदर्भों के रूप में माना जाना चाहिए बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए दीर्घकालिक जल प्रौद्योगिकी के लिए संभावित समाधान के रूप में माना जाना चाहिए ।

इस रिपोर्ट को अद्यतन करने में हाल ही के कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रों और विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों द्वारा प्रकाशित तकनीकी पुस्तकों को भी संदर्भित किया गया है । विभिन्न अवधारणाओं, जलविज्ञानीय प्रक्रियाओं और जल इंजीनियरिंग प्रौद्योगिकियों को दर्शाने वाले आंकड़ों को भी तकनीकों की अवधारणाओं को स्पष्ट करने में मदद हेतु शामिल किया गया है । प्रस्तुत रिपोर्ट को संशोधित करते समय, इसका शीर्षक थोड़ा बदल दिया गया है, इसे "प्राचीन भारत में जल विज्ञान" से ''प्राचीन भारत में जलविज्ञानीय

ज्ञान" कर दिया गया है । मैं इस रिपोर्ट के प्रथम संस्करण के प्रबुद्ध लेखकों की उनकी अभिदृष्टि और प्रयासों के लिए सराहना करता हूं । मैं डॉ. ए.के.लोहनी, वैज्ञानिक-जी, डॉ. सुहास खोब्रागड़े, वैज्ञानिक-एफ, डॉ. मनोहर अरोड़ा, वैज्ञानिक-डी, डॉ. पी.के.सिंह, वैज्ञानिक-डी, मु. फुरकान उल्लाह, सहायक पुस्तकालय एवं सूचना अधिकारी, श्री प्रदीप कुमार उनियाल, वरिष्ठ अनुवादक, श्रीमती चारू पाण्डेय, पुस्तकालय एवं सूचना सहायक तथा श्री नरेश कुमार, रिसोर्स परसन को उनके सराहनीय प्रयासों के लिए धन्यवाद देता हूं । इस रिपोर्ट में विभिन्न स्रोतों से सामग्री संकलित की गई है । इन स्रोतों तथा उनके योगदाताओं का भी विधिवत आभार प्रकट किया जाता है ।

इस रिपोर्ट की सॉफ्टकॉपी तथा संस्थान की संपूर्ण जानकारी वेबसाइट www.nihroorkee.gov.in पर उपलब्ध है ।

शरद जैन

रुड़की, 21 जनवरी, 2019

(शरद कुमार जैन)
निदेशक

प्रस्तावना (प्रथम संस्करण)

प्राचीन भारतीय साहित्य का अवलोकन करते हुए यह पाया गया है कि इसमें जलविज्ञान के ज्ञान का असीमित भंडार उपलब्ध है। इसने संस्थान को भारतीय साहित्य में छिपे जलविज्ञानीय खजाने की संपत्ति को संकलित करने के लिए विभिन्न उपलब्ध प्राचीन साहित्य का गहन अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया। यह रिपोर्ट जलविज्ञान के विभिन्न घटको की प्रक्रियाओं और उनकी सहभागिता पर जानकारियों के संकलन का एक प्रयास है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में जलविज्ञानीय जानकारी पर अध्ययन करते समय यह प्रत्यक्ष और प्रशंसा योग्य था कि पिछली 3 शताब्दियों में जिन जलविज्ञानीय अवधारणाओं की खोज और आविष्कार किया जा रहा है, वे 3000 ईसा पूर्व से भी पहले प्राचीन भारतीय साहित्य में अच्छी तरह से ज्ञात और प्रलेखित थे।

अन्य विज्ञानों की तरह, जल का विज्ञान भी प्राचीन भारत में अच्छी तरह से विकसित था। यह खेदजनक है कि वर्तमान में हमारे प्राचीन भारतीय विज्ञानों पर पर्याप्त ध्यान और सम्मान नहीं दिया जा रहा है। ऐसा इसलिए है क्योंकि हम लोगों ने एक धारणा विकसित कर ली है कि प्राचीन भारतीय विज्ञान ने आधुनिक विज्ञानों के सामने, जो कि वर्तमान स्थिति बहुत विकसित हो गए हैं, अपनी सारी उपयोगिता खो दी है। लेकिन यदि कोई प्राचीन भारतीय विज्ञान की वास्तविक खूबियों को समझने की कोशिश करता है, तब हमारी यह अवधारणा गलत साबित होगी । उम्मीद है कि वर्तमान रिपोर्ट जल विज्ञान के क्षेत्र में इसको साबित करने में सक्षम होगी।

किए गए अध्ययन से पता चलता है कि भारतीय जलविज्ञानीय अनुसंधान क्षेत्र पूरी तरह से अन्वेषित नहीं किया गया है। प्राचीन भारतीय साहित्य में जलविज्ञान के ज्ञान की खोज करने वाली इस तरह की रिपोर्ट आज की एक महती आवश्यकता बन गई है, खासकर जब आधुनिक युग में जल विज्ञान ने भारत में अपनी सही जगह पा ली है। मुझे यकीन है कि अगर प्राचीन भारतीय जल विज्ञान को पुनर्जीवित किया जाता है और व्यावहारिक उपयोग के लिए लाया जाता है तो यह भारत के लिए विशेष रूप से और मानव जाति के लिए बहुत लाभकारी साबित होगा ।

इस मूल्यवान दस्तावेज को श्री टी.एम. त्रिपाठी, वैज्ञानिक 'बी' और संस्थान के अन्य वैज्ञानिको और कर्मचारियों द्वारा तैयार किया गया है । देश के कई पुस्तकालयों से परामर्श किया गया, लेकिन यहां पर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार और सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पुस्तकालयों का विशेष उल्लेख किया जाना उपर्युक्त होगा ।

दिनांक: 7 सितंबर, 1990

(सतीश चंद्र)
निदेशक

विषय-सूची

शीर्षक	पृष्ठ सं.
प्रस्तावना (द्वितीय संस्करण)	iii
प्रस्तावना (प्रथम संस्करण)	v
चित्रों की सूची	ix
तालिकाओं की सूची	ix
संक्षेपणों की सूची	xi
सारांश	xiii
अध्याय 1: प्रस्तावना	01
अध्याय 2: जलविज्ञानीय चक्र	11
अध्याय 3: बादलों की उत्पत्ति, वर्षा और इसका मापन	23
अध्याय 4: अपरोधन, अन्त:स्यन्दन तथा वाष्पोत्सर्जन	51
अध्याय 5: भू-आकृति विज्ञान तथा सतही जल	61
अध्याय 6: भूजल	67
अध्याय 7: जल गुणवत्ता और अपशिष्ट जल प्रबंधन	77
अध्याय 8: जल संसाधन उपयोग, संरक्षण और प्रबंधन	91
अध्याय 9: समापन टिप्पणी	99
ग्रंथ सूची	101

चित्रों की सूची

चित्र सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं
1.1	मोहन जोदड़ो का महान स्नान घर	05
1.2	धोलावीरा में परिष्कृत जलाशय, प्राचीन सिंधु घाटी सभ्यता में हाइड्रोलिक सीवेज प्रणाली के प्रमाण	06
2.1	जलविज्ञानीय चक्र की विभिन्न प्रक्रियाओं का निरूपण	11
2.2	वाल्मीकि की रामायण के किष्किन्धा कांड से लिए गए जलविज्ञानीय चक्र का योजनाबद्ध निरूपण, मलिक (2016)	20
2.3	आधुनिक जलविज्ञानीय चक्र और वाल्मीकि रामायण में जलविज्ञानीय चक्र अवधारणा के बीच योजनाबद्ध तुलना, मलिक (2016)	21
3.1	बादलों की उत्पत्ति की प्रक्रिया	24
3.2	साइमन वर्षामापक (आधुनिक वर्षामापक)	47
6.1	लोथल में खोजे गए 2600 ई.पू. के कुएं	67
6.2:	विभिन्न क्षेत्रों को दर्शाते अबाधित जलभृत	69
7.1	सिंधु घाटी सभ्यता के मोहन जोदड़ों तथा लोथल शहरों की जलनिकासी और सफाई व्यवस्था	87
8.1	दक्षिण बिहार के गया शहर में अहाड़ पाइने प्रणाली	94
8.2	सुदर्शना झील, गिरनार, जूनागढ़, गुजरात का एक दृश्य	95

तालिकाओं की सूची

तालिका सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं
1.1	जल का भगवान के रूप में आह्वान करते कुछ चुने हुए श्लोक ।	07

संकेताक्षरों की सूची

(कार्यों की अनुमानित तारीख सहित)

ए.वी.	अथर्ववेद (नवीनतम वेद, 800 ई.पू.)
बी.पी	भव प्रकाश (16 वीं शताब्दी ईस्वी)
ब्रह्माण्ड	ब्रह्माण्ड पुराण (तीसरी - चौथी शताब्दी ई. पू.)
गरुड़	गरुड़ पुराण (6वीं शताब्दी ई. पू.-7वीं शताब्दी ईस्वी)
जी.बी.	गोपथ ब्राह्मण (लगभग 1000 ई. पू.)
कर्मा	कर्म पुराण (600 ई.पू. से 700 ईस्वी)
लिंगा	लिंग पुराण (600 ई. पू. से 700 ईस्वी)
एम.बी.	महाभारत (400 ई. पू. से 400 ईस्वी.)
मार्कंडेय	मार्कंडेय पुराण (6वीं शताब्दी ई. पू. से 4वीं शताब्दी ईस्वी)
मत्स्य	मत्स्य पुराण (6वीं शताब्दी ई. पू. से 4वीं शताब्दी ईस्वी)
नारद	नारद पुराण (600 ई. पू. से 275 ईस्वी.)
पद्म	पद्म पुराण (600 ई. पू.-400 ईस्वी)
राम	रामायण (800 ई. पू.-200 ई. पू.)
आर.वी.	ऋग्वेद (3000 ई. पू. या उससे पहले)
एस.वी.	सामवेद (3000 ई. पू.)
एस.बी.	सतपथ ब्राह्मण (2000 ई. पू.)
स्कंद	स्कंद पुराण (7वीं शताब्दी ईस्वी)
ताई.अरा.	तैत्तिरीय अरण्यका
टी.एस.	तैत्तिरीय संहिता (ऋग्वेद के बाद 1500 ई.पू.-800 ई.पू.)
वैश-सूत्र	वैसेसिका सूत्र (600 ई. पू.-700 ई. पू.)
वायु	वायु पुराण (200 ई. पू.-400 ईस्वी)
विष्णु	विष्णु पुराण (600 ई. पू.-275 ईस्वी)
वाई.वी.	यजुर्वेद (ऋग्वेद के बाद, 1500 ई. पू.-800 ई. पू.)

सारांश

हमारा अस्तित्व कई मायनों में जल पर निर्भर है । वास्तव में, यह कहा सकता है कि हमारी पूरी सभ्यता पानी के उपयोग पर बनी है । भारत एक ऐसा देश है जहाँ पाँच हज़ार साल से अधिक की सभ्यता है, जिसका जलविज्ञान के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान है। प्राचीन भारतीय सभ्यता, जिसे सिंधु घाटी सभ्यता या हड़प्पा सभ्यता के रूप में जाना जाता है, 3300-1300 ई.पू. के आसपास अपने चरम पर थी । अब यह ज्ञात हुआ है कि हड़प्पा के लोगों के पास पानी की आपूर्ति और सीवरेज की परिष्कृत प्रणालियाँ थीं, जिनमें हाइड्रोलिक संरचनाएँ जैसे बांध, टैंक, पंक्तिबद्ध कुएँ, पानी के पाइप और फ्लश शौचालय आदि शामिल थे । हड़प्पा और मोहन जोदड़ो के शहरों ने दुनिया की पहली शहरी स्वच्छता प्रणाली विकसित की। सिंधु घाटी सभ्यता में सिंचाई के उद्देश्य से बड़े पैमाने पर कृषि का कार्य किया गया था और नहरों के एक व्यापक नेटवर्क का उपयोग किया गया था । गिरनार में 3000 ई.पू. निर्मित जलाशय सहित परिष्कृत भंडारण प्रणालियों को विकसित किया गया था।

प्राचीन वेद, पुराण, मेघमाला, मयूरचित्रा, वृहत्संहिता, बौद्ध साहित्य और जैन धर्म और अन्य विभिन्न रचनाएं प्राकृतिक तंत्र के बारे में अथाह ज्ञान से परिपूर्ण हैं जिसमें पृथ्वी, वायुमंडल, जलमंडल, लिथोस्फीयर और मनुष्य से उनकी सहभागिता आदि शामिल है । यदि कोई इन प्राचीन संस्कृत साहित्यों का अध्ययन करता है, तो वह देखता है कि इनमें जलविज्ञान के महत्वपूर्ण संदर्भ शामिल हैं। यह देखा गया है कि प्राचीन भारत में विभिन्न जलविज्ञानीय प्रक्रियाओं की जानकारियां बहुत प्रसिद्ध थीं। प्राचीन भारत में वाष्पीकरण, संघनन, मेघ निर्माण, वर्षा और उसके पूर्वानुमान को अच्छी तरह से समझा जाता था। मौर्यकाल (4वीं शताब्दी ई.पू.) के दौरान वर्षा और इसकी मौसमी भिन्नता को मापने के लिए वर्षामापी यंत्र विकसित किए गए थे जो कि आधुनिक जलविज्ञान के समान सिद्धांतों पर आधारित थे । हालांकि भूजल की घटना के बारे में पश्चिमी देशों का ज्ञान बेबुनियाद सिद्धांतों पर आधारित था, फिर भी भारतवासियों के पास भूजल आवर्ती, वितरण और उपयोग की सुस्पष्ट विकसित अवधारणाएं थीं। साहित्यों से यह भी पता चलता है कि भूजल की उपस्थिति का पता लगाने के लिए जलविज्ञानीय संकेतकों का उपयोग किया जाता था । मौर्य युग के दौरान सुसंगठित जल मूल्य प्रणाली भी लागू थी । जल संकट तथा बाढ़ की तीव्रता को कम करने में जल के कुशल उपयोग के महत्व को इंगित करने के लिए वेदों में विभिन्न संदर्भ उपलब्ध हैं ।

प्रस्तुत रिपोर्ट में, प्राचीन भारतीय साहित्य में जलविज्ञान से संबंधित ज्ञान एवं बुद्धिमत्ता संकलन किया गया है । इस अवसर पर, यह उपयुक्त समय है कि हम अपने पारंपरिक ज्ञान और कार्यों को पहचानें और उन्हें अपने मौजूदा जल प्रबंधन प्रणालियों में आत्मसात करें । इस तरह की विशिष्ट पहल, पुराने और नए कार्यों में निश्चित रूप से एक बेहतर तालमेल बनाएगी ।

अध्याय-1

प्रस्तावना

विज्ञान प्रकृति और जीवधारियों से संबंधित हमारे ज्ञान का सवंर्धन करता है। यह ब्रह्माण्ड की कई अज्ञात चीजों का पता लगाने में मनुष्यों की सहायता करता है तथा व्यावहारिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। वस्तुतः मानव जीवन की गुणवत्ता को सुधारने के साथ-साथ विज्ञान के कई अन्य कार्य भी हैं। यद्यपि प्राचीन काल में मनुष्य ने आधुनिक युग की तरह उन्नति नहीं की थी, विज्ञान अज्ञात था, फिर भी मनुष्य को यह अभास था कि जीवित रहने के लिए जल अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसलिए प्राचीनतम सभ्यताएं मुख्य रूप से हाइड्रोलिक प्रकृति की रही हैं क्योंकि उनकी भिन्न-भिन्न जरूरतों की पूर्ति के लिए जल एक विश्वसनीय स्रोत रहा है। नदियों ने उन लोगों के जीवन तथा रहन-सहन में ऐसी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई कि उनकी सभ्यताओं को नदी घाटी सभ्यताओं के रूप में जाना जाने लगा। इनमें से प्रमुख मिश्र की नील घाटी सभ्यता, मेसोपोटामिया में टिग्रीस घाटी सभ्यता, चीन में होवांग-हो घाटी सभ्यता तथा भारत में सिंधु घाटी सभ्यता थी। इनमें से अधिकतर सभ्यताएं 3500 से 300 ईसा पूर्व तक मौजूद थी और इस बात के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध हैं जो यह दर्शाते हैं कि नदियों को अक्षुण्ण रखने तथा उनसे अधिकाधिक लाभ के साथ-साथ बाढ़ और सूखे के कारण होने वाली क्षति से उनकी सुरक्षा के लिए कुछ अभियांत्रिक उपायों को भी अपनाया गया था।

मानवजाति ने तकरीबन 10000 वर्ष पहले स्थायी बस्तियों की स्थापना की जब लोगों ने जीने के लिए खेती-बाड़ी के तरीके अपनाए। स्थायी रूप से बसने तथा कुछ हद तक सुरक्षित जीवन के कारण, जनसंख्या पहले से कहीं अधिक तेजी से बढ़ने लगी तथा व्यवस्थित कृषि जीवन द्वारा गांवों, शहरों और अन्ततः राज्यों का निर्माण संभव हुआ और ये सभी जल पर अत्यधिक निर्भर थे (वोरिनिन एट.एल. 2007)। इसने मनुष्यों और जल के बीच एक अद्वितीय संबंध बनाया। प्राचीन सभ्यताएं जैसे कि सिंधु घाटी, मिश्र, मेसोपोटामिया और चीनी उन स्थानों पर विकसित हुई जहां कृषि तथा मानव आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पानी सुगमता से उपलब्ध था, यानि झरनों, झीलों, नदियों तथा कम समुद्र तल के निकट (यन्नोपोलस एट. अल., 2015)। सामाजिक स्थिरता के साथ-साथ नदियों से अधिकाधिक लाभ लेने और हानिकारक बाढ़ और अन्य हाइड्रोलोजिकल चरम सीमाओं से बचाने के लिए वस्तुत: सभी प्राचीन सभ्यताएं अत्यधिक विकसित तथा तकनीकी रूप से सुसज्जित थी। गुरूत्वाकर्षण के प्रयोग द्वारा अधिक दूरी तक जल पहुंचाने के लिए लम्बे एक्वाडक्ट सिस्टम (वास्तव में, कभी-कभी 100 किमी. से

अधिक) का भी उपयोग किया जाता था। इसके अलावा, कांस्य युग (सीए 3200-1100 ईसा पूर्व) के समय से वर्षा जल के संग्रहण के लिए जलकुंड़ों, नहरों और भूजल कूपों का भी उपयोग किया जाता था। हालांकि, इन सभ्यताओं के पतन और इनमें से कुछ के क्रमिक क्षय को मानव जाति द्वारा लाभ अर्जित करने के लिए नदियों के हाइड्रोलॉजी और हाइड्रोलिक्स में हस्तक्षेप के प्रतिकूल और हानिकारक परिणामों से निपटने की अक्षमता के लिए भी माना जा सकता है। स्कारबोरो एट.एल. (2003) तथा ऑर्टलोफ एट.एल. (2009) ने समीक्षा की है कि किस तरह पूर्वी प्रबंधन ने पूर्वी और पश्चिमी गोलार्द्धों में विशिष्ट उदाहरणों के माध्यम से प्राचीन सामाजिक संरचनाओं और संगठनों को प्रभावित किया जिसमें पूरी प्राचीन दुनिया शामिल थी।

यह सर्वविदित है कि आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में भारतीय विरासत एक महान और उत्कृष्ट तथा संभवतः अद्वितीय है, जैसा कि पश्चिम के कुछ महान व्यक्तियों ने प्रमाणित किया है जिन्होंने संस्कृत सीखने के लिए कठिन परिश्रम किया और विश्व को सुप्रसिद्ध वेद और उपनिषदों का अंग्रेजी एवं जर्मनी में अनुवाद प्रस्तुत किया। आध्यात्मिक विकास के अलावा, प्राचीन भारत ने विज्ञान के विकास को भी प्रदर्शित किया। सिंधु घाटी सभ्यता जो कि सबसे पुरानी तथा सबसे विकसित सभ्यताओं में से एक है, विस्तार में दुनिया की सबसे बड़ी तथा प्रोटो-ऐतिहासिक भारतीय उपमहाद्वीप में विज्ञान तथा समाज के विकास के स्तर का प्रतीक है। प्राचीन भारतीय साहित्य, वेदों के युग से, विज्ञानों के इस विकास को प्रदर्शित करते हैं जिसमें जल विज्ञान भी शामिल है। सौभाग्य की बात है कि प्राचीन भारतीय संस्कृत के उत्कृष्ट कार्यों को संरक्षित किया गया है तथा भारत में विदेशी संस्कृतियों एवं जातियों का कई सदियों तक अधिपत्य होने के बाद भी इसे खोया नहीं गया है।

प्राचीन भारत में विज्ञान

वैज्ञानिक दुनिया के बहुत कम शोधकर्ता ही इस बात की जानकारी रखते हैं, जैसा कि वैज्ञानिकों द्वारा समझा और स्वीकारा गया है, कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में कितना विज्ञान निहित है। यह एक अहम प्रश्न है कि ‘‘क्या प्राचीन ऋषियों-संतों ने आधुनिक विज्ञान के श्रमपूर्वक एकत्र किए गए प्रेक्षण आंकड़ों तथा उचित संकल्पना के माध्यम से उन्हें समाकलित करने की कार्यपद्धति को अपनाया होगा’’? सर्वविदित है कि अन्तर्निहित सच्चाई को समझने के माध्यम के रूप में प्रेक्षण को नजरअंदाज नहीं किया जा सका।

विज्ञान को ‘‘प्राकृतिक घटनाओं के सुव्यवस्थित ज्ञान और जिन संकल्पनाओं में इन घटनाओं को व्यक्त किया गया है उसके बीच संबंधों के तर्कसंगत अध्ययन" के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसका व्यापक अर्थ ‘‘ भौतिक जगत को वर्णित तथा नियंत्रित करने

की एक व्यवस्थित कार्यपद्धति" भी है । यह देखा जा सकता है कि वैज्ञानिक जो कुछ भी इस प्रकृति में पाते हैं वह उन्हें उसी क्रम में एक तार्किक एवं अनुकूल विवरण प्रदान करते है। यह प्रक्रिया मानव जीवन को धीरे-धीरे प्रभावित करती है।

भारत में तीसरी/चौथी सहस्राब्दी ईसा पूर्व की शुरूआत में एक उच्च विकसित सभ्यता जिसे सिंधु घाटी सभ्यता या हड़प्पा सभ्यता (कांस्य युग सभ्यता) के रूप में जाना जाता है, पाकिस्तान और उत्तर-पश्चिम भारत के हिस्सों में सिंधु नदी के उपजाऊ मैदानी भागों में पनपी। हड़प्पा सभ्यता मुख्य रूप से भारत के गुजरात, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर राज्य तथा पाकिस्तान के सिंध, पंजाब तथा बलोचिस्तान प्रांतों में स्थित थी। यह मुख्य रूप से सिंधु और घग्गर-हकरा नदियों के क्षेत्रों में स्थित थी। प्रमुख शहरी केंद्र हड़प्पा, मोहन जोदड़ो, ढोलावीरा, गनेरीवाला तथा राखीगढ़ी में थे।

सिंधु सभ्यता के लोगों ने खूब वैज्ञानिक तरक्की की। उन्होंने लम्बाई, द्रव्यमान तथा समय मापने में बड़ी दक्षता प्राप्त की। ये लोग समान वजन तथा माप की पद्धति विकसित करने वाले पहले व्यक्तियों में से थे। विभिन्न समारोहों तथा अनुष्ठानों के लिए वैदिक कैलैन्डरों की तैयारी ने आकाशीय पिण्डों और उनके आवागमन के अध्ययन की आवश्यकता जताई और इससे खगोल विज्ञान का विकास हुआ। वैदिक आर्यों को यह तथ्य ज्ञात था कि सूर्य के प्रकाश में सात रंग की किरणें होती हैं जैसा कि ऋग्वेद (आर.वी II.12.12) के निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट होता हैः

यःसप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवेसप्तसिन्धून।
योरोहिणमस्फुरद्वज्रवाहुर्घामारोहन्तं स जनासइन्द्रः। (आर.वी II.12.12)

जिसका अर्थ है कि सात रंगों की किरणों वाला सूर्य नदियों में पानी के प्रवाह का कारण है (वर्षा की वजह से)। वर्षा के बाद, यह फिर से पृथ्वी से पानी को आकर्षित करता है और यह चक्र निरंतर चलता रहता है।

भारतीय अंकगणित उल्लेखनीय है क्योंकि कि इसमें इस बात के प्रमाण हैं कि तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व नोटेशन की एक प्रणाली विकसित की गई थी जिससे आज भी प्रचलित संख्याओं की प्रतिलिपि बनाई गई थी, आर्यभट्ट (476-550 सी.ई.) जो कि एक महान गणितज्ञ तथा खगोलशास्त्री थे ने अंकगणितीय श्रृंखला के सारांश का अध्ययन किया और क्वाडरेटिक इंडिटरमिनेट समीकरणों को हल किया। सातवीं शताब्दी के महान गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने खगोलीय समस्याओं के लिए स्पष्ट रूप से सामान्य बीजगणीतीय पद्धतियों के अनुप्रयोग को

विकसित किया। उपचार विद्या की शुरूआत तथा जड़ी बूटियों के उपचार की जानकारी अथर्वेद के ''कौशिकसूत्र" में पाई जाती है। सुस्रुता तथा चरक प्रसिद्ध सर्जन और चिकित्सक थे। बौद्ध काल के दौरान, प्रसिद्ध विद्वान जीवक अपने अद्भुत चिकित्सा और शल्य चिकित्सा के उपचार के लिए प्रख्यात थे। तक्षशिला, नालन्दा तथा विक्रमशिला के प्राचीन विश्वविद्यालयों में चिकित्सा भी एक महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य विषय था। सातवीं शताब्दी के बागभ्ट के चिकित्सा कार्य में मरकरी (पारा) का पहला उल्लेख (प्रसाद, 1980) शामिल है। भारत के बौद्ध दर्शनशास्त्र की सबसे उल्लेखनीय विशेषता कणाद (600 ई. पूर्व) (प्रकाश, 1965) के परमाणु सिद्धान्त का निर्माण है। विश्वास (1969) ने सही टिप्पणी की है कि भारत, चीन, अरब देशों के अग्रणी योगदान के बिना यूरोप में आधुनिक विज्ञान की तरक्की शायद ही संभव हो पाती।

लम्बे समय तक विदेशी शासकों के प्रभुत्व ने संस्कृत और अन्य साहित्यों की वैज्ञानिक लेखन को आगे नहीं बढ़ने दिया। आजादी के बाद भी, इस स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ और इसका स्पष्ट कारण यह है कि आधुनिक वैज्ञानिकों तथा संस्कृत विद्वानों के बीच कोई पारस्परिक अन्तःक्रिया एवं संवाद की कमी है। वैज्ञानिकों ने प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध वैज्ञानिक सामग्री के बारे में कभी भी ध्यान नहीं दिया और संस्कृत विद्वानों ने संस्कृत कार्यों में उपलब्ध वैज्ञानिक प्रकृति की समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करने की परवाह नहीं की। वे स्वयं ''व्याकरण" मिमांशा इत्यादि जैसी समस्याओं में उलझ कर रह गए। इसलिए आज तक भी, प्राचीन कार्यों की वैज्ञानिक सामग्री लगभग पूरी तरह से अज्ञात और अविश्लेषित बनी हुई है।

भारतीय परम्पराओं में जल का महत्व

भारतीय परम्पराओं में जल का महत्व प्राचीन काल से ही रहा है, और भारत को संस्कृति और अध्यात्म की भूमि कहा जाता है। भारतीय लोगों के सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन पर जल का हमेशा एक व्यापक प्रभाव रहा है। मोहन जोदड़ों का ''महान स्नान गृह" इस बात का एक अद्भुत प्रमाण है (चित्र 1.1)। इस स्नान गृह को विद्वानों द्वारा ''प्राचीन विश्व का सबसे पुराने सार्वजनिक जल टैंक" के रूप में माना जाता है। हालांकि इस संरचना का यथार्थ महत्व ज्ञात नहीं है, फिर भी अधिकांश विद्वान इस बात से सहमत हैं कि इस टैंक का उपयोग विशेष धार्मिक अनुष्ठानों के लिए किया गया था।

चित्र 1.1 मोहन जोदड़ो का महान स्नानागार (स्रोत:विकीपीडिया)

भारत में शुष्कतम मौसम और पानी की कमी ने जल प्रबंधन के क्षेत्रों में कई अन्वेषी कार्यों को मूर्तरूप दिया है। सिंधु घाटी सभ्यता के समय से इस पूरे क्षेत्र में सिंचाई प्रणाली, भिन्न-भिन्न प्रकार के कूपों, जल भण्डारण प्रणाली तथा न्यून लागत और अनवरत जल संग्रहण तकनीकें विकसित की गई थी। 3000 ईसा पूर्व में गिरनार में बने जलाशय तथा पश्चिमी भारत में प्राचीन स्टेप-वैल्स कौशल के कुछ उदाहरण हैं। प्राचीन भारत में जल पर आधारित तकनीकें भी प्रचलन में थी। कौटिल्य के सदियों पुराने लिखे अर्थशास्त्र (400 ईसा पूर्व) में हस्तचालित कूलिंग उपकरण ''वारियंत्र" (हवा को ठंडा करने के लिए घूमता हुआ जल स्प्रे) का संदर्भ दिया गया है। पाणिनी (700 ईसा पूर्व) के ''अर्थशास्त्र" और ''अष्टाध्यायी" में वर्षामापी (नायर, 2004) यंत्रों का विधिवत संदर्भ उपलब्ध है।

चित्र 1.2 : धोलावीरा में परिष्कृत जलाशय, प्राचीन सिंधु घाटी सभ्यता में हाइड्रोलिक सीवेज सिस्टम्स का प्रमाण। (स्रोत:विकीपीडिया)

वैदिक और अन्य भारतीय परम्पराओं में ग्रहों तथा नदियों सहित सभी प्राकृतिक शक्तियों को देवताओं और देवियों के रूप में माना जाता है और इनकी पूजा की जाती है। प्रांरभिक भारतीय संस्कृति नदी क्षेत्रों के निकट विकसित हुई। वास्तव में देश के नाम की व्युत्पत्ति सिंधु नदी के नाम से की गई है। गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नामक सातों नदियां सांस्कृतिक आधार पर महत्वपूर्ण मानी जाती है। उदाहरण के लिए पवित्र नदी गंगा पौराणिक रूप से भगवान शिव से जुड़ी है और हिंदुओं द्वारा आत्मा की शुद्धि और मस्तिष्क के पुनरूद्धार के प्रतीक के रूप में मानी जाती है। पूरे भारत के लोग अपने पापों को धोने के लिए पवित्र नदी में डुबकी लगाते हैं। पूजा अनुष्ठान के पश्चात मंदिर में दिव्य जल को ग्रहण किया जाता है, पूजा की प्रतिमाओं पर पवित्र जल छिड़का जाता है, तथा भोजन के लिए रखे गए एक पत्ते को पानी से साफ किया जाता है और इसकी पूजा की जाती है। तालिका 1.1 में कुछ महत्वपूर्ण श्लोक दिए गए हैं जिन्हें जल को भगवान के रूप में पूजते समय उच्चारित किया जाता है:-

तालिका 1.1 कुछ चयनित श्लोक (प्रार्थना) जिनके द्वारा जल देवता की अर्चना की जाती है :-

आपो हिष्ठा मयोभुवस्था न ऊर्जे दधातन। महे रणाथ चक्षसे ॥1॥	हे जल! आपकी उपस्थिति से वायुमंडल बहुत तरोताजा है, और यह हमें उत्साह और शक्ति प्रदान करता है। आपका शुद्ध सार हमें प्रसन्न करता है, इसके लिए हम आपको आदर देते हैं।
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उश्तीरिव मातरः ॥2॥	हे जल! आप अपना यह शुभ सार, कृपया हमारे साथ साझा करें, जिस प्रकार एक मां की इच्छा होती है कि वह अपने बच्चों को सर्वश्रेष्ठतम प्रदान करे।
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥3॥	हे जल! जब आपका उत्साही सार किसी दुखी प्राणी को प्राप्त होता है, तो वह उसे जीवंत कर देता है। हे जल! इसलिए आप हमारे जीवन दाता हैं।
द्रां नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। द्रां योरभि स्रवन्तु नः ॥4॥	हे जल! जब हम आपका सेवन करते हैं तो उसमें शुभ दिव्यता होने की कामना करते हैं। जो शुभकामनाएँ आप में विद्यमान हैं, उसका हमारे अंदर संचरण हो।
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्। अपो याचामि भेषजम् ॥5॥	हे जल! आपकी दिव्यता कृषि भूमियों में भी संचरित हो!। हे जल, मेरा आग्रह है कि आप फसलों का समुचित पोषण करें।
अप्सु मे सोमो अग्रवीदन्तर्विष्वानि भेषजा। अग्नि च विश्वभुवम् ॥6॥	हे जल, सोमा ने मूझे बताया कि जल में दुनिया की सभी औष्धीय जड़ी बूटियाँ और अग्नि, जो दुनिया को सुख-समृद्धि प्रदान करती है, भी मौजूद है।
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वेS मम। ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥7॥	हे जल, आप में औष्धीय जड़ी बूटियाँ प्रचुर मात्रा में समायी हुई हैं; कृपया मेरे शरीर की रक्षा करें, ताकि मैं सूर्य को लंबे समय तक देख सकूं (अर्थात मैं लंबे समय तक जीवित रह सकूँ।

इदमापः प्र वहत यत्ि्क च दुरितं मयि। यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम॥8॥	हे जल, मुझ में जो भी दुष्ट प्रवृतियाँ हैं, कृपया उन्हें दूर करें, और मेरे मस्तिष्क में विद्यमान समस्त विकारों को दूर करें और मेरे अंतर्मन में जो भी बुराइयाँ हैं उन्हें दूर करें।
आपो अद्यान्वचारिद्गां रसेन समगस्महि। पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा॥9॥	हे जल, आप जो उत्साही सार से भरे हुए हैं, मैं आपकी शरण में आया हूँ। मैं आप में गहराई से सम्माहित हूं (अर्थात स्नान) से घिरा हुआ है (अग्नि सिद्धांत) जो अग्नि (कर; मुझमें चमक पैदा करे।

प्राचीन भारत में जलविज्ञानीय ज्ञान

हाइड्रो साइंस के ऐतिहासिक विकास पर कई लेखकों (बेकर और हॉर्टन, 1936, चाउ, 1964, विश्वास, 1970) ने सघन शोध एवं प्रकाशन का कार्य किया है लेकिन इन सभी कार्यों में प्राचीन भारत में किए गए कार्यों का संदर्भ विशिष्ट रूप से अनुपस्थित है । (प्रसाद, 1980) । उदाहरण के लिए चाउ (1964) ने जलविज्ञान के इतिहास के वर्णन में ग्रीस में होमर, थेल्स, प्लेटो, अरस्तु, रोम में प्लिनी और उस समय के कई बाइबल विद्वानों के कार्यों का उल्लेख किया है लेकिन किसी ने भी भारतीय विद्वान, साहित्य, और उनके महान योगदान का जिक्र नहीं किया गया है । इनमें से अधिकांश पश्चिमी विद्वानों ने जल की उत्पत्ति के बारे में बेबुनियाद सिद्धांतों पर विश्वास किया । उदाहरण के लिए थेल्स, एक आयनियन दार्शनिक, गणितज्ञ और खगोलशास्त्री ने कहा कि समुद्र का पानी हवा से चट्टानों में चला जाता है यही भूजल का कारक है । प्लेटो (427-347 ईसा पूर्व), एक महान एथेनियन दार्शनिक ने कहा है कि समुद्रों, नदियों, झरनों आदि का पानी एक बड़े भूमिगत जलाशय से आता है और वही वापस चला जाता है । अरस्तु (384-322 ईसा पूर्व) ने कहा कि झरनों आदि का पानी भूमिगत जल से भूमिगत ओपनिंग के माध्यम से प्राप्त होता है । प्रसिद्ध साधु दार्शनिक लुसियस एनाकस सेनक्का (4 ईसा पूर्व) ने घोषणा की कि वर्षा, स्प्रिंग और भूमिगत जल का स्रोत नहीं हो सकती क्योंकि यह पृथ्वी में केवल कुछ ही फुट तक प्रवेश करता है । (प्रसाद, 1980) । मार्क्स विट्रुवेज जो ईसा मसीह के समय में रहे हैं, ने एक सिद्धांत बनाया कि भूजल वर्षा का एक हिस्सा है जो कि अन्त:स्यन्दन के माध्यम से उत्पन्न होता है । पश्चिमी विद्वानों के ये सभी सिद्धांत प्राचीन काल में पश्चिमी दुनिया में जलविज्ञान के विकास के निम्न स्तर का संकेत देते हैं । दूसरी ओर समकालीन भारतीय विद्वानों ने जलविज्ञान के विभिन्न पहलुओं के उन्नत स्तर के ज्ञान का विकास किया था जैसा कि प्राचीन भारतीय साहित्य में परिलक्षित होता है जिसमें जलविज्ञान

और उनके व्यावहारिक अनुप्रयोगों पर बहुत मूल्यवान और महत्वपूर्ण वैज्ञानिक जानकारियां दी गई हैं । इस बात के प्रमाण के लिए पर्याप्त पुरातात्विक तथ्य हैं कि सिंधु घाटी के हड़प्पाकालीन लोग (2500 और 1700 ईसा पूर्व) मौसमी वर्षा और सिंधु नदी की बाढ़ से संबंधित घटनाओं के बारे में अच्छी जानकारी रखते थे जो आधुनिक मौसम संबंधी जांच (श्रीनिवासन, 1975) द्वार अनुमोदित है । वैदिक ग्रन्थ, जिनकी रचना संभवत: 1500 से 1200 ईसा पूर्व (कुछ विद्वानों के अनुसार 1700-1100 ईसा पूर्व) के बीच हुई थी, में ''जलविज्ञानीय चक्र'' के लिए महत्वपूर्ण संदर्भ शामिल है । जलविज्ञान की महत्वपूर्ण अवधारणाएं विभिन्न श्लोकों और वेदों में विभिन्न देवताओं की अराधनाओं और प्रार्थनाओं में दी गई हैं । इसी तरह अन्य संस्कृत साहित्य में भी जलविज्ञान से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारियां समाहित हैं ।

भारत के क्षेत्रों में तथा दुनिया में कहीं भी कृषि की उत्पत्ति और विकास और सिंचाई में अनुभव अलग-अलग प्रक्रियाएं नहीं हैं, जैसा कि यजुर्वेद के निम्नलिखित श्लोकों से स्पष्ट है:-

कृषिश्चमें यज्ञेनकल्पंताम।
वृष्टश्चमें यज्ञेनकल्पंताम।। यजुर्वेद, 18–9।।
मारूतश्चमें यज्ञेनकल्पंताम।। यजुर्वेद, 18–17।।

ये श्लोक वर्षा, कृषि और वायु या पर्यावरण और उनके अंतर्संबंध के लिए यज्ञ के महत्व को दर्शाते हैं ।

जलविज्ञानीय चक्र की विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे कि वाष्पीकरण, संक्षेपण, वर्षा, धारा प्रवाह आदि के दौरान जल का क्षय नहीं होता है बल्कि एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाता है । इसका वैदिक एवं बाद के समय काल के लोगों को पूर्णत: ज्ञान था । पौधों द्वारा पानी का अंत:ग्रहण, विभिन्न प्रकार के बादलों, उनकी ऊंचाई वर्षा क्षमता, सूर्यकी किरणों और हवा द्वारा सूक्ष्म कणों में पानी का विभाजन तथा पिछले वर्षा के प्राकृतिक परिदृश्यों के पूर्वानुमान के प्रेक्षणों के आधार पर वर्षा की मात्रा के पूर्वानुमान पुराणों, वृहतसंहिता (550 ए.डी.), मेघमाला (900 ए.डी.) आदि में भी उपलब्ध है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र (400 ईसा पूर्व) तथा पाणिनी की अष्टाध्यायी (700 ईसा पूर्व) में वर्षा मान/वर्षा यंत्रों का संदर्भ उपलब्ध है । भारत के विभिन्न भागों में वर्षा की मात्रा की भविष्यवाणी भी कौटिल्य ने की थी । भारतीय लोग वर्षा पर चक्रवाती प्रभाव, भौगोलिक प्रभाव, विकिरण और वाष्पीकरण तथा पृथ्वी के संवहन हीटिंग के प्रभाव से भली-भांति परिचित थे । उस काल में विभिन्न अन्य पहलुओं जैसे कि अंत:स्यंदन, अवरोधन, धारा प्रवाह, भूआकृतिकी विज्ञान तथा वर्षा की अपरदन क्रिया की भी जानकारी उपलब्ध थी । महाकाव्य रामायण (200 ईसा पूर्व) में आर्टिशियन कुओं के संदर्भ भी उपलब्ध हैं।

प्राचीन भारत में भूमि जल विकास और जल की गुणवत्ता पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता था जैसा कि वृहतसंहिता (550 ए.डी.) से स्पष्ट है ।

जल प्रबंधन और संरक्षण, 400 ई.पू. के आस-पास सुसंगठित जल मूल्य निर्धारण प्रणाली, बांधों, टैंकों आदि की निर्माण विधियाँ और सामग्री, बैंक संरक्षण, स्पिलवे आदि के संदर्भ प्राचीन संस्कृत साहित्य में प्राचीन भारत में जल संसाधनों तथा जलविज्ञान के विकास के उच्च स्तर को दर्शातें हैं । वैदिक साहित्य, अर्थशास्त्र, पुराणिक स्रोतों, वृहत्संहिता, मयूराचित्रा, मेघमाला, जैन, बौद्ध और अन्य प्राचीन भारतीय साहित्यों में असंख्य संदर्भ विद्यमान हैं जो प्राचीन भारत में जलविज्ञान और जल संसाधनों की स्थिति का वर्णन करते हैं । जलविज्ञान और जल संसाधनों के विभिन्न तत्व जिन पर विभिन्न प्राचीन भारतीय साहित्यों में और कुछ लेखकों द्वारा चर्चा की गई जैसे कि त्रिपाठी (1969), प्रसाद (1980), प्रसाद (1987) आदि, उनकी समीक्षा और विश्लेषण किया गया है और उन्हें इस खंड में प्रस्तुत किया गया है ।

प्राचीन भारत में जलविज्ञान और जल संसाधनों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई है और उन्हें इस रिपोर्ट में निम्नलिखित अध्यायों के तहत प्रस्तुत किया गया है:-

1 परिचय
2. जलविज्ञानीय चक्र
3. बादल निर्माण, वर्षा, और इसका मापन
4. अवरोधन, अंतस्यन्दन और वाष्पीकरण,
5. भू-आकृतिविज्ञान और सतही जल
6. भूजल
7. जल गुणवत्ता और अपशिष्ट जल प्रबंधन
8. जल संसाधन उपयोग, संरक्षण और प्रबंधन
9. निष्कर्ष

अध्याय-2

जलविज्ञानीय चक्र

जलविज्ञानीय चक्र, जल विज्ञान की एक मौलिक और महत्वपूर्ण अवधारणा है। जलविज्ञानीय चक्र में सम्पूर्ण वायुमंडल (गैसीय आवरण), जलमंडल (सतह और अधस्तल जल), स्थलमंडल (मिट्टी और चट्टाने), जीवमंडल (पौधे और जानवर), और महासागर सम्मिलित हैं। जल, पृथ्वी प्रणाली के इन पांच क्षेत्रों के माध्यम से, तीनों चरण (ठोस (बर्फ), तरल और वाष्प) से एक या अधिक में से गुजरता है। चित्र 2.1 में विभिन्न प्रक्रियाओं को दर्शाया गया है ।

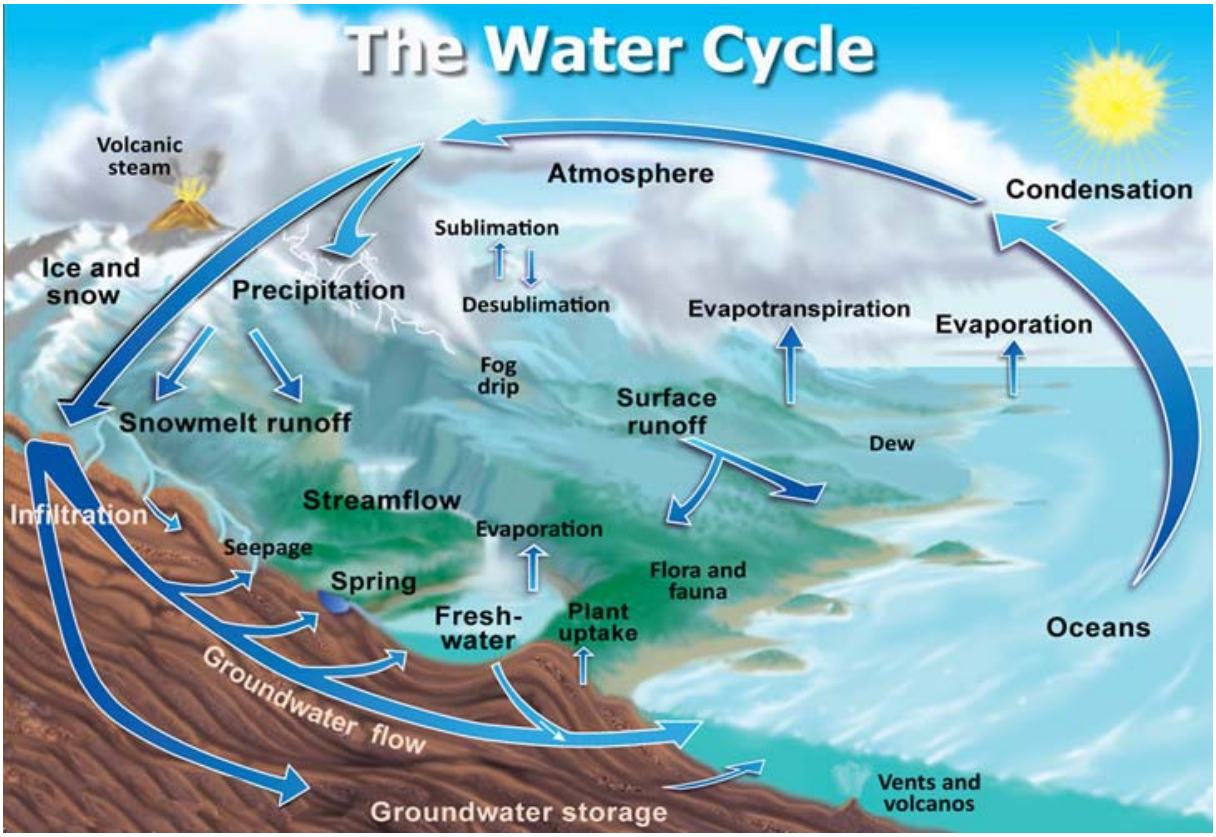

चित्र 2.1: जल विज्ञानीय चक्र की विभिन्न प्रक्रियाओं का निरूपण ।

(स्रोत: जॉन इवान्स एवं हॉवर्ड पेरीमैन, यू.एस.जी.एस.-http://ga.water.usgs.gov/edu/watercycle.html)

3000 से अधिक पुराने वैदिक ग्रंथों में जल और 'जलीय चक्र' के मूल्यवान संदर्भ शामिल हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, सबसे महत्वपूर्ण अवधारणाओं का उल्लेख ऋग्वेद में विभिन्न श्लोको में इंद्र (नभमण्डल), अग्नि, हवा इत्यादि विभिन्न देवी और देवताओं को संबोधित

श्लोकों एवं प्रार्थनाओं के रूप में किया गया है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद से एक श्लोक इस प्रकार बताया गया है:

आदह स्वाधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।
दधानानामः यज्ञियम।। आर.वी**, 6.4** ।।

इसका अर्थ है कि जल को, जो सूर्य की गर्मी के कारण छोटे- छोटे कणों में विभाजित हो जाता है, उसे हवा द्वारा ले जाया जाता है और उसके बादल में रूपांतरण के बाद बार-बार वर्षा होती है। ऋग्वेद (आर.वी, आई, 7.3) के एक अन्य श्लोक में कहा गया है कि भगवान ने सूर्य बनाया है और इसे इस प्रकार स्थापित किया है कि पूरा ब्रह्मांड रोशन हो जाता है, ऐसे ही पानी को लगातार निकालने और फिर इसे बादल में परिवर्तित कर अंततः वर्षा के रूप में देना, ब्रह्मांड का नियम है।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्य रोहयादिद्दि।
वि गोभिरादृिमैरयत।। आर.वी. I,7.3 II

ऋग्वेद के अग्रलिखित श्लोको में हवा द्वारा पानी के पृथ्वी से वायुमण्डल में हस्तांतरण, सूर्य के किरणों द्वारा जल के छोटे कणों में टूटने और वाष्पीकरण और पुन: आगामी वर्षा (आई, 23.17), मां पृथ्वी से वाष्पित पानी से बादल के बनने और वर्षा के रूप में अपनी मां के पास वापसी (I, 32.9) की व्याख्या की गयी है।

य ईख्ड़यन्त पर्वमतान् तिरः समुद्रमर्णवम्।
मरूद्भिरग्न आ गहि।। आर.वी.,I,19.7 II

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह।
ता नो हिन्वन्त्वघ्वरम्।। आर.वी.,I,23.17 ।।

नीवातयां अभवद्वृत्रपुत्तेन्द्रो अस्या अव अधर्जभार।
उत्तराः सूरधरः पुत्र आसीददनुः शये सहवत्सानधेनुः।। आर.वी.,I,32.9।।

ऋग्वेद श्लोक संख्या के I,32.10 में कहा गया है कि पानी कभी एक ही स्थान में नहीं ठहरता हैं। यह लगातार वाष्पित होता रहता है और नीचे आता रहता है, लेकिन इनके अति क्षुद्र आकार के कारण, हम वाष्पित पानी के कणों को नहीं देख सकते हैं।

ऋग्वेद के निम्नलिखित श्लोक कहते हैं कि सूर्य की किरणें वर्षा का कारण हैं और सूर्य दुनिया के सभी हिस्सों से पानी वाष्पित करता है और सृजन की शुरुआत केवल आग के माध्यम से होती है, जो लगातार पानी के निष्कर्षण और निर्वहन में लगी हुई है ।

अतिष्ठन्तीनाम विवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
बृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घतम् आशयदिन्द्रशत्रुः।। आर.वी.,I,32.10 ।।

ऋतं देवाय कृप्वते सवित्र इन्द्रायाहिघे न रमन्त आपः।
अहरह्र्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम्।। आर.वी.,II,30.1 ।।

यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्प्र तं ज नित्री विदुष उवाब।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धनुयो यन्त्यर्थम्।। आर.वी.,II,30.2 ।।

ऋग्वेद के एक श्लोक में आगे बताया गया है:

या आपो दित्या उत वा स्त्रवन्त खनित्रिमा उत वा याः स्व्यंजाः।
समुद्रार्या याः शुचवः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।।आर.वी.,VII,42.2 II

भावार्थ : जल, जो स्वर्ग से हैं, उनमें से जो अपने आप उत्पन्न होते हैं, उज्ज्वल शुद्ध जल जो समुद्र की और जाता है, वे दिव्य जल यहां मेरी रक्षा करें। इन छंदों की तरह, ऋग्वेद के कई अन्य छंद (आर.वी. VIII, 6.19, VIII, 6.20; और VIII, 12.3) जल वाष्पीकरण का कारण, बादल के बनने, वर्षा, पानी के प्रवाह और महासागरों में इसके भंडारण का भी वर्णन करते हैं ।

ऋग्वेद का श्लोक आरवी. X, 27.33 निम्नानुसार है:

देवानां माने प्रथंमा अतिष्ठान्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन्।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूषा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम।। आर.वी.,X,27.23 ।।

भावार्थ: सृजन की शुरुआत में, सूर्य आदि की उत्पत्ति होती है, आकाश से वर्षा होती है और बादल, वायु और सूर्य के संयोजन से वनस्पति बनती है। सूर्य वाष्प और हवा के रूप में पानी निकालता है, जिससे बादल और वर्षा बनते है।

जलीय चक्र के बारे में ज्ञान का आगे विस्तार साम वेद (VI-607) में पाया जाता है। साम वेद का एक श्लोक निम्नानुसार है:

समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्व नघस्पृणान्ति।
तम् शुचिंशुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुय यन्त्यायः।।एस.वी.पूर्वाचिकVI,607।।

भावार्थ: एक प्रकार का पानी ऊपर जाता है और दूसरे प्रकार का पानी नीचे आता है, ये दोनों सूर्य की गर्मी के द्वारा प्रशोधन के बाद वातावरण में जा सकते हैं। ऊपर से वे वर्षा के बाद नदियों में बहते हैं और वहां से समुद्र में संग्रहित हो जाते हैं।

इसी तरह, यजु वेद पानी के बादलों से पृथ्वी तक जल के संचार की प्रक्रिया और सरिताओं के माध्यम से इसके प्रवाह और महासागरों में भंडारण और वाष्पीकरण की प्रक्रिया को बताते हैं (वाई.वी., X -19)।

प्र पर्वतस्य वृषभष्य पृष्णन्नावश्चरान्ति स्वसिचज्ञयानाः।
ता आववृत्रन्नधरा गुदक्ता अहिं बुहन्यमनु रीयमाणाः
विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विर्ष्णोः क्रान्तमसि।। वाई.वी.,X-19 ।।

ऋग्वेद, साम वेद और यजुर वेद में जलीय चक्र के हिस्से के रूप में अंतःस्पदंन, जल संचार, भंडारण और वाष्पीकरण की अवधारणा स्पष्ट रूप से बताई गयी हैं। अथर्व वेद के समय जल वाष्पीकरण, संघनन, वर्षा, नदी प्रवाह और भंडारण की अवधारणा और चक्र के पुनरावृत्ति को पहले के वेदों में समझाया गया था। अथर्व वेद के अनुसार, सूर्य की किरणें वर्षा और वाष्पीकरण का मुख्य कारण हैं, जैसा कि नीचे उल्लिखित है:

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्ग सूर्यः सह।
तानो हिन्वन्त्वध्वरम।। ए.वी., I,5.2 ।।

अथर्व वेद के श्लोक 1, 32.4 में कहा गया है कि वर्षा जल की पृथ्वी में प्रविष्टि और पृथ्वी से वायुमण्डल तक चक्र में निरंतर संचरण सूर्य की किरणों से होता है। श्लोक निम्न प्रकार से है:

विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधि श्रितम्।
दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः।। ए.वी.,I,32.4 ।।

अथर्व वेद की एक और श्लोक (V, 24.5) में कहा गया है कि ऑक्सीजन के कारण पृथ्वी से पानी वायुमंडल में जाता है और फिर कार्बन डाइऑक्साइड के कारण यह नीचे (वर्षा) आता है।

मित्रावरुणौ वृष्टयाधिंपती तौ माक्ताम्।
अस्मन् ब्रह्मंण्यसिमन् कर्मण्यस्यां पुरोधायांमस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यांमाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।। ए.वी., V,24.5 ।।

जलविज्ञानीय चक्र जलमौसम विज्ञान का भी एक प्रमुख अंग है । इसे वाराहमहिहिरा की वृहत संहिता (550 ईसवी) में देखा जा सकता है जिसमें तीन अध्याय जलमौसम विज्ञान के लिए समर्पित होते हैं जिनमें बादलों के अंकुरण (अध्याय 21), हवा के अंकुरण (अध्याय 22), और वर्षा की मात्रा (अध्याय 23) शामिल है। डाकारगलम (वृहत संहिता के अध्याय 54) के श्लोक 1 और 2 जो भूजल अन्वेषण के विज्ञान के महत्व को बताते हैं तथा मनुष्य को पानी के अस्तित्व का पता लगाने में मदद करते हैं, इस प्रकार हैं:

धमर्य यशस्यं च वदाभवतोहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः।
पुंसां यथाग्डेषु शिरास्तथ्वै क्षितावपि प्रोन्नतनिनसंस्था

एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषांत्।
नाना रसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव।। वृ.सं., 54.1-2 ।।

पृथ्वी के नीचे जल की शिराएं (कैपिलरी) मानव शरीर में शिराओं की तरह हैं, कुछ ऊंची और कुछ नीची। आसमान से गिरने वाला पानी, पृथ्वी की प्रकृति में अंतर के कारण विभिन्न रंग और स्वाद लेता है । इन श्लोकों का अर्थ है कि पृथ्वी की सतह से शिराओं (कैपिलरी) के माध्यम से वर्षा जल का अंतःस्पदंन भूजल का स्रोत है। महाकाव्य महाभारत (XII, 183.15.16) में बताया गया हैं कि पानी, आग और हवा की मदद से आकाश में ऊपर उठता है और फिर इसकी आर्द्रता संघनित हो जाती है और बाद में वर्षा का कारण बनता है।

अग्निः पवनसंयुक्तः खं समाक्षिषते जलम्।
सोग्निमारुतसंयोगाद् घनत्वमुपपघते। एम.बी. ,XII,183.15 ।।

तस्याकाशे निपतितः स्नेहस्तष्ठति यो परः।
स संघातत्वमापन्नो भूमित्वमनुगच्छति।। एम.बी. ,XII,183.16 ।।

महाभारत के श्लोक 184.15-16 में कहा गया है कि पौधे अपनी जड़ों के माध्यम से पानी पीते हैं। पौधों में पानी के ऊपर चढ़ने की प्रक्रिया को पाइप के माध्यम से पानी के ऊपर चढ़ने के उदाहरण से समझा जा सकता जाता है। ऐसा कहा जाता है कि पानी के ऊपर चढ़ने की प्रक्रिया को हवा का संयोजन सुगम बनाता है।

पादैः सलिलपानाच्च् व्याधीनां चापि दर्शनात्।
व्याधिप्रतिक्रियत्वाच्च् विघते रसनं द्रुमे।। एम.बी. ,XII,184.15 ।।

वक्त्रेणोत्पलवालेन यथोर्ध्व जलमाददेत्।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः।। एम.बी. ,XII,184.16 ।।

महाभारत के श्लोक XII, 362.4 और B में यह समझाया गया है कि हवा और सूर्य की किरणें फैलती हैं और पूरे ब्रह्मांड पर एक साथ गिरती हैं। श्लोक आगे कहता है कि वर्षा के मौसम (चार महीने) में सूर्य के कारण वर्षा होती है और अगले आठ महीनों में उसी पानी को फिर से सूर्य की किरणों से वापस निकाला जाता है। इस प्रकार, यह जलविज्ञानीय चक्र के दोनों रूपो को स्पष्ट रूप से बताता है जैसे कि.

यतो वायुर्विनिः सृत्य सूर्यरश्म्याश्रितो महान्।। एम.बी.XII,362.4 ।।

योष्टमासांस्तु शुविना किरणेनोक्षित पयः।
प्रत्यादत्ते पुनः काले मिाश्चर्यमतः परम्ः।। एम.बी.,XII,362.B ।।

वेदों और महाकाव्यों की तरह, पुराणों में (जो ईसा पूर्व 6 वीं शताब्दी से 7 वीं शताब्दी बीच दिनांकित हैं) हमें विभिन्न संदर्भ मिलते हैं जो उनकी अवधि के दौरान जलविज्ञान के ज्ञान के विकास को दिखाते हैं। मत्स्य पुराण (खंड I, अध्याय 54) में बताया गया है कि नमी के साथ संतृप्त हवा ही निर्माण (पृथ्वी) का कारण है।

वायवाधारा वहन्ते वै सामृताः कल्पसाधकाः।। Matsya I,54.15 ।।

मत्स्य पुराण के श्लोक I, 54.2 9-34 और वायु पुराण के छंद 51.23-24-25-26 में हमे वाष्पीकरण के ज्ञान के बारे में पता चलता है। इन छंदों के अनुसार, पानी के तपने और उसका वाष्प में रूपांतरण सूर्य की किरणों के कारण होता है जो हवा की मदद से वायुमंडल में ऊपर चढ़ता है, जिससे दोबारा जीवित प्राणियों की भलाई के लिए अगले 6 महीने में वर्षा होती है। विभिन्न श्लोक नीचे दिए गए हैं :

ध्रुवेणाधिष्टताश्चापः सूर्यो वै गृह्य तिष्ठति
सर्वभूतशरीरेषु त्वापो ह्यानुश्चताश्चियाः।। Matsya I,54.29 ।।

दह्यमानेषु तेष्वेह जग्ड़मस्थावरेषु च।
धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रामन्तीह सर्वशः।। Matsya I,54.30 ।।

तेन चास्त्राणि जायन्ते स्थानमभ्रमयं स्मृतम्।
तेजोभिः सर्वलोकेकेभय आदत्ते रश्मभिर्जलम्।। I,54.31 ।।

समुद्राद्वायुसंयोगात् वहन्त्यापो गभस्तयः।
ततस्त्वृतुवशात्कालेपरिवर्तन् दिवाकरः।। I,54.32 ।।

नियच्छत्यापो मेघेभयः शुक्लाः शुक्लैस्तुरश्मभिः।
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापोवायुनासमुदीरिताः।। I,54.33 ।।

ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्वये।
वायुभिस्तनितंचैव विधुतस्त्वग्निजाः स्मृता।। मत्स्य I,54.34 ।।

लिंग पुराण में एक पूर्ण अध्याय (I, 36) जल विज्ञान के प्रति समर्पित है। यह वाष्पीकरण, संघनन और वर्षा को बहुत ही वैज्ञानिक रूप से उपयुक्त उदाहरणों के साथ समझाता है और बताता है कि पानी को नष्ट नहीं किया जा सकता है, केवल इसकी अवस्था बदली जा सकती है।

दन्दह्यमानेषु चराचरेषु गोधूमभूतास्त्वभ निष्क्रमन्ति।
या या ऊर्ध्व मारूतेनेरिता वे तास्तास्त्वभांयग्निनावायु च।। लिंग I,36.38 ।।

अतो धूमाग्निवातानां संयोगस्त्वमुच्यते।
वारीणि वर्षतीत्यभ्रमभ्रस्येशः सहस्त्रदृक्।। लिंग I,36.39 ।।

भावार्थ: सूर्य से मिलने के बाद, पृथ्वी पर अधिकांश सामग्री में निहित पानी धुएं (वाष्प) में परिवर्तित हो जाता है और हवा के साथ आकाश में चढ़ जाता है और बाद में बादल में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार, वाष्प, आग और हवा का संयोजन बादल बनने का कारण है। इन बादलो के कारण हजारों आंखों वाले भगवान इंद्र के मार्गदर्शन में वर्षा होती है।

इसी प्रकार लिंग पुराण के श्लोक ।, 36.66-67 में कहा गया है कि पानी कभी नष्ट नहीं होता है या लुप्त नहीं होता, लेकिन केवल एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित किया जाता है यानी सूर्य की गर्मी से पानी वाष्प में, फिर बादल और इसके बाद वर्षा में परिवर्तित हो जाता है और हवा आदि से वर्षा की कमी होती है अर्थात।

अस्यैवेह प्रसादात्तु वृष्टर्नाताभवदिदवजाः।
सहस्त्र गुणमुत्स्त्रष्टूं मादत्ते किरणैर्जलम्।। लिंग I,36.66 ।।

जलस्य नाशो वृद्विर्वा नातत्येवास्य विचारतः।
ध्रवेणाश्रिष्ठतो वायुवृष्टि संहरते पुनः।। लिंग I,36.67 ।।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि लिंग पुराण में वर्षा, वाष्पीकरण, संघनन, बादल बनने इत्यादि के सुस्पष्ट सिद्धान्त समाविष्ट होने के साथ - साथ यह ज्ञान भी था कि पानी को न तो बनाया जा सकता है, न ही नष्ट किया जा सकता है। लिंग पुराण के अध्याय 41, खंड । में साल के महीनों के साथ जलविज्ञानीय चक्र के पहलुओं में परिवर्तन के बारे में जानकारी प्रस्तुत की गयी है । अर्थात।

वसंते चैव ग्रीष्मे च शतैः स तपते त्रिभिः।
वर्षांस्वथो शरदि च चतुर्भिस्यं प्रवर्षति।। लिंग I,41.30 ।।

चैत्रे मासि भवेदंशुर्धाता वैशाखतापन।
जेष्ठे मासि भवेदिन्द्र आषाढ़े वार्यमा रविः।। लिंग I,41.33 ।।

इसी तरह वायु पुराण में भी जलविज्ञानीय चक्र के मूल्यवान संदर्भ भी शामिल हैं। वायु पुराण (51.14-15-16) इस प्रकार कहा गया है:

आदित्यपीतं सूर्याग्नेः सोमं संक्रमते जलम्।
नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकाधानं प्रवर्तते।। वायु,51.14 ।।

यत्सोमात्स्त्रवते सूर्य तदभ्रेष्वतिष्ठते।
मेघा वायुनिघातेन विसृजन्त जलं भुवि।। वायु **51.15** ।।

एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते चं पुनर्जलम्।
न नाशमु उदकस्यास्ति तदेव परिवर्तते।। वायु 51.16 ।।

भावार्थ : सूर्य द्वारा वाष्पित पानी हवा की केशिकाओं के माध्यम से वायुमण्डल में चढ़ जाता है, और ठंडा होकर संघनित हो जाता है। बादलों के बनने के बाद, हवा की शक्ति से वर्षा होती है। इस प्रकार, इन सभी क्रियाओं में पानी नष्ट नहीं जाता है बल्कि एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाता है।

ब्रह्माण्ड पुराण (II, अध्याय 9) में भी जलविज्ञानीय चक्र पर कुछ जानकारी दी गयी है। इसमे कहा गया है कि सूर्य की सात रंगीन किरणें सभी स्रोतों को गरम कर पानी निकालती हैं (II, 9.138-139)। उसके बाद, विभिन्न आकारों और रंगों के बादल बनते हैं। फिर वे उच्च तीव्रता

और अति ध्वनि के साथ वर्षा करते हैं (II, 9.167-168)। इस तरह, सूर्य की आग नियंत्रित होती है।

नावृष्टया परिविश्येत वारिणा दीप्यते रविः।
तस्मादयः पिबन्यो वै दीप्यते रविरंबरे।। II,9.138 ।।

तस्य ते रश्मयः सप्त पिबंत्यंभो महार्णवात्।
तेनाहारेण संदीप्ताःसूर्याः सप्त भवंत्युत।। ब्रह्मांड II,9.1391 ।।

सप्तधा संवृतात्मानस्तमाग्निं शमयंत्युत।
ततस्ते जलदा वर्ष मुंचंति च महौघवत्।। II,9.167 ।।

सुघोरमशिवं सर्व नाशयंति च पावकम्।
प्रवृर्ष्टश्च तथात्यर्थ वारिणापूर्यते जगत्।। ब्रह्मांड II,9.168 ।।

जलविज्ञान और जलविज्ञानीय चक्र के बारे में विभिन्न प्राचीन भारतीय साहित्य में उपलब्ध ज्ञान कोष अभी भी पूरी तरह से खोजा नहीं गया है। जैसा कि वी.टी.चोव (1974) अगस्त, 1974 में पेरिस में यूनेस्को द्वारा आयोजित संगोष्ठी के दौरान कहा गया "एशिया में जल विज्ञान का इतिहास सबसे अच्छा है और आगे के अध्ययन के लिए इससे बहुत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है"। हालांकि प्रयास निरंतर जारी हैं, पर वे प्रयाप्त नहीं हैं। हाल के एक अध्ययन में, मलिक (2016) ने रामायण महाकाव्य से जलविज्ञानीय चक्र के वैचारिक पहलुओं को खोजने और विश्लेषण करने के प्रयास किए हैं जिसका केंद्र बिंदु महान कवि वाल्मीकि रचित रामायण के किश्किधा कांड के चौथे कांड का 28 वे सर्ग से जलीय चक्र का वैचारिक पहलु हैं। मलिक (2016) द्वारा वाल्मीकि रामायण के किश्किधा कांड से निकाले गए जलविज्ञानीय चक्र के योजनाबद्ध प्रदर्शन चित्र 2.2 में दिखाया गया है।

मलिक (2016) ने जलविज्ञानीय चक्र की आधुनिक अवधारणा की तुलना वाल्मीकि रामायण के दौरान की अवधारणा के साथ की है। तुलना को चित्र 2.3 में दिखाया गया है। दोनो अवधारणाओं के तुलनात्मक विश्लेषण से उन्होंने देखा कि "आधुनिक अवधारणा में सूर्य पूरे साल समुद्र के पानी के साथ अन्य जल ढांचो से पानी को वाष्पित तथा उत्सर्जित करता है। लेकिन महाकाव्य में, उत्सर्जन का कोई संकेत नहीं है। इसके अलावा अपवाह में तुलनात्मक अंतर है जहां वर्तमान अवधारणा अपवाह, अंतःस्पदंन और उप-सतह प्रवाह पर विचार किया गया है। महाकाव्य अवधारणा में अंतःस्पदंन और उप-सतह प्रवाह अनुपस्थित है"। हालांकि, अगर हम इन सीमाओं को अनदेखा करें तो रामायण की अवधारणा उत्कृष्ट और आधुनिक अवधारणा के बहुत करीब है।

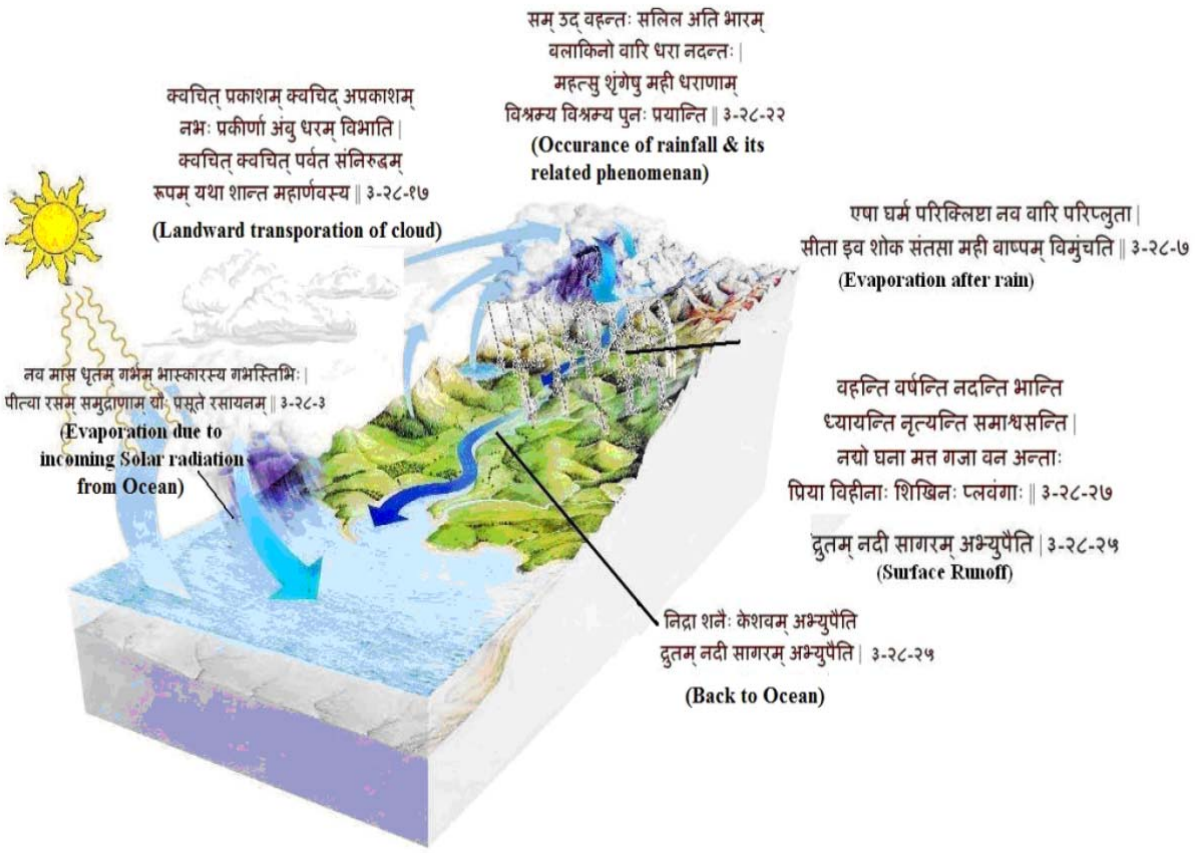

चित्र 2.2: वाल्मीकि रामायण के किष्किंधा कांड से लिए गए जलविज्ञानीय चक्र का योजनाबद्ध निरूपण, मलिक (2016)।

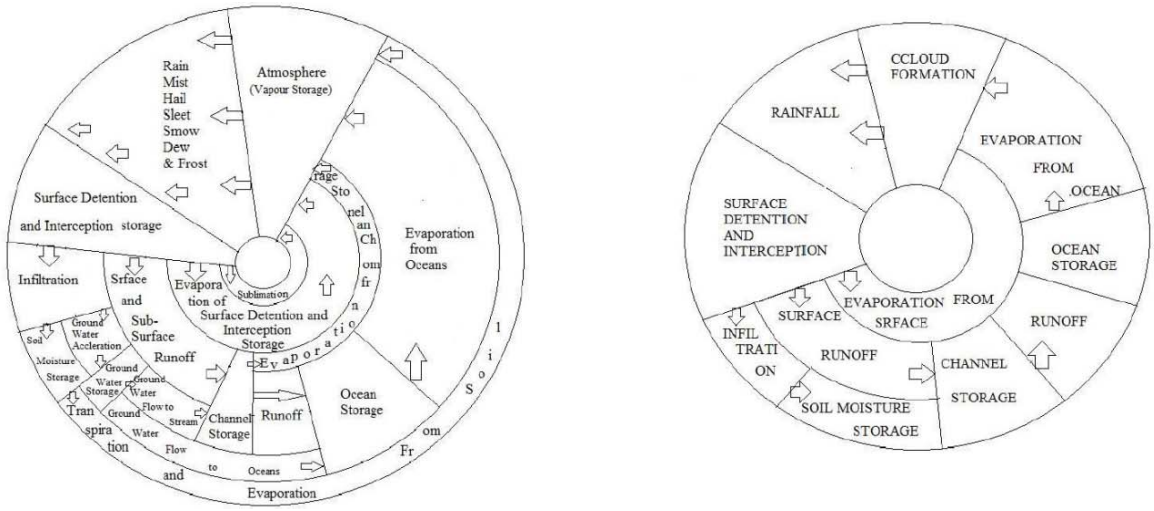

चित्र 2.3: आधुनिक जलविज्ञानीय चक्र और वाल्मीकि रामायण में जलविज्ञानीय चक्र अवधारणा के बीच योजनाबद्ध तुलना, मलिक (2016) ।

उपसंहार

इस अध्याय से पता चलता है कि वैदिक युग के दौरान और उसके बाद में महाकाव्य और पुराण के समय जल विज्ञान का ज्ञान अत्यधिक उन्नत था, हालांकि उस समय के लोग आधुनिक रूप से परिष्कृत उपकरणों के बिना, केवल प्रकृति के अपने अनुभव पर पूरी तरह से निर्भर थे। वैदिक युग में, भारतीयों ने इस अवधारणा को विकसित किया था कि सूर्य किरणों और हवा के प्रभाव के कारण पानी सूक्ष्म कणो में विभाजित हो जाता है, जो हवा की केशिकाओं द्वारा वायुमंडल में चढ़ते हैं । वहां यह संघनित हो जाता है और बाद में वर्षा के रूप में गिरता है। जलविज्ञानीय चक्र के पहलुओं में मासिकवार परिवर्तन का ज्ञान भी था। पौधों द्वारा पानी का चूसन जो कि हवा की सहायता से होता है तथा अंतःस्पदंन का ज्ञान प्राचीन साहित्य में प्रकट होता है। उपर्युक्त अध्ययन एवं उदाहरणों से, हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारतीयों को प्राचीन काल में जलविज्ञानीय चक्र के बारे में सुविकसित अवधारणा का ज्ञान था जबकि समकालीन दुनिया उस समय पानी की उत्पत्ति और पानी के वितरण के बेबुनियाद सिद्धांतों पर निर्भर थी। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय जल विज्ञान के ज्ञान को उस समय की महान उपलब्धि के रूप में माना जा सकता है।

अध्याय-3

बादलों की उत्पत्ति, वर्षा और इसका मापन

वर्षा उन तीन मुख्य प्रक्रियाओं (वाष्पीकरण, संघनन, और वर्षा) में से एक है जिनके द्वारा जलविज्ञानीय चक्र, वायुमंडल और पृथ्वी की सतह के बीच पानी का निरंतर आदान-प्रदान, संचालित होता है । इस अध्याय में प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्णित विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे कि बादलों की उत्पत्ति, सूर्य और महासागर और पृथ्वी की सतह के बीच अंतःक्रिया, संघनन और वर्षा पर चर्चा की गई है। यह अध्याय प्राचीन भारत में वर्षा मापन के लिए उपयोग की जाने वाली तकनीकों पर भी प्रकाश डालता है।

मौसम और बादलों की उत्पत्ति

ऋग वैदिक आर्यों ने उत्सुकता और सावधानी से मौसम में बदलाव की सीमाओं को निर्धारित किया है और पूरे वर्ष को इस तरह से छह भागो में विभाजित किया है जैसा श्लोकों में स्पष्ट किया गया है:

उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्तो अनुसेषिधत्।
गोभिर्यवं न चर्कृषत्।। आर.वी.,I,23.15 ।।

ऋग वैदिक आर्यों को स्पष्ट रूप से पता था कि सूर्य मौसम का निर्धारक है और पृथ्वी के जीवों के हित के लिए मौसम बनाए गए हैं।

त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दित्येकमप्सु।
पूर्वांमनु प्र दिशं पार्थिवानामृतूत्प्राशासद्वि दधावनुष्ठु।। आर.वी., I,95.3 ।।

चित्र 3.1 में आधुनिक ज्ञान के अनुसार सामान्य बादलो की उत्पत्ति और संबंधित प्रक्रियाओं को दर्शाया गया है। बादलो की उत्पत्ति के बारे में ज्ञान ऋग्वेद काल में भी मौजूद था।

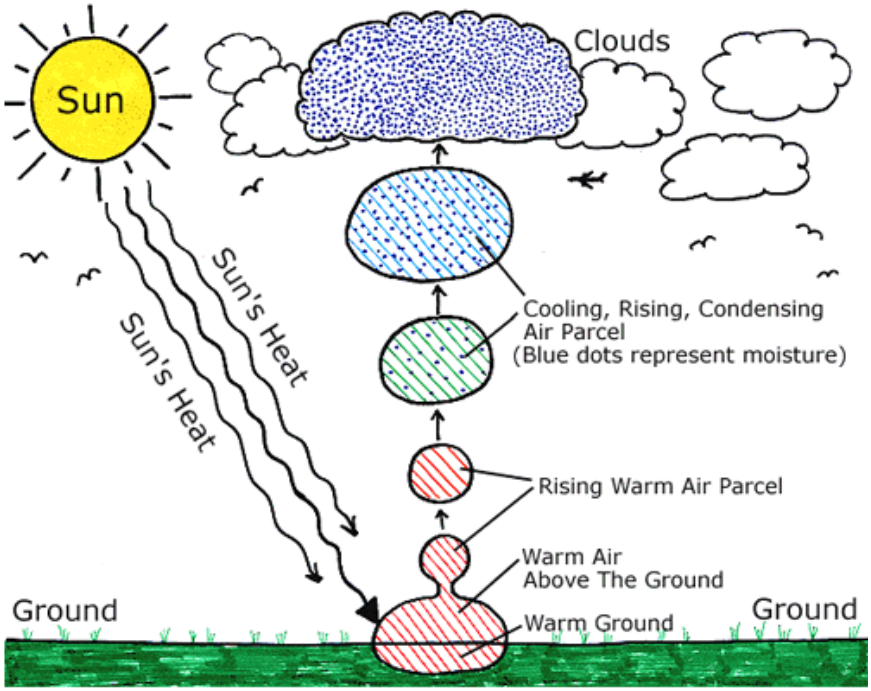

चित्र 3.1: बादलों की उत्पत्ति की प्रक्रिया (स्रोत: https://climate.ncsu.edu/edu/CloudFormation)

विकिरण, संवहन धारायें और उनके परिणाम स्वरूप वर्षा को निम्नलिखित श्लोकों के माध्यम से ऋग्वेद (I,164.47, VII, 70.2 और I, 161. 11-12) में वर्णित किया गया है ।

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः।
अगोस्यस्य यदसस्तना गृहे तद्घोदमृभवो नानु गच्छथ।। आर.वी., I,161.11 ।।

संमील्यं यद्भुवना र्प्यसर्पत क्व स्वत्तात्या पितरा व आसतुः।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राबवीत्प्रो तस्मा अबवीतन।। आर.वी., I, 161.12 ।।

कृष्णं नियांन हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्धृतेन पृथिवी व्युघते।। आर.वी., I, 164.47 ।।

ऋग्वेद के उपरोक्त श्लोकों में यह भी कहा गया है कि सूर्य की किरणें वर्षा का कारण हैं, और बादल विभिन्न तत्वों से गठित होते हैं। ऋग्वेद के कुछ श्लोक (I,27.6; I,32.8; I,32.14; I,37.11; II, 24.4; V, 55.3) सूर्य और हवा द्वारा पानी के वाष्पीकरण द्वारा बादल के गठन और फिर उससे वर्षा का वर्णन करते हैं, और सूर्य के अलावा कोई अन्य वर्षा का कारण नहीं है।

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा अपाक आ।
सधो दाशुषे क्षरसि।। आर.वी., I, 27.6 ।।

नदं न भिन्ममुया शयानं मनो रूहाणा अतिं यन्त्यापः।
यश्चिद्वत्रो महिना र्प्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतः शीर्बभूव।। आर.वी., I,32.8 ।।

उपरोक्त श्लोक बताते हैं कि सूर्य की किरणों की गर्मी से सारा पानी हवा के साथ आकाश में चला जाता है और बादलों में परिवर्तित हो जाता है और फिर सूर्य की किरणों के प्रवेश के बाद वर्षा होती है और नदियों, तालाबों, समुद्रों आदि में जमा हो जाती है। कहा जाता है कि पानी की भरपाई के लिए बादल उत्तरदायी हैं। ऋग्वेद के श्लोक V 55.3 में शक्तिशाली बादलों के एक साथ आर्द्रता के गठन की व्याख्या की गई है ।

साकं जाताः सुभवः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं बावृधुर्नरः
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत।। आर.वी.,V,55.3।।

ऋग वैदिक काल के दौरान वर्षा की मौसमी भिन्नता ज्ञात थी, जिसे निम्नलिखित श्लोकों (RV.VI, 20.2 और VI, 30.3) के माध्यम से दर्शाया गया है, जिसमें कहा गया है कि सूर्य आठ महीनों के दौरान पृथ्वी से पानी निकालता है और फिर इसी पानी से चार महीनो के वर्षा काल के दौरान वर्षा होती है ।

दिवो न तुभयमविन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम्।
अहिं यत्दृत्रमयो वव्रिवांसं ह्न्नृजीषिन्विष्णुना सचानः।। आर.वी.,VI,20.2 ।।

ऋग्वेद के श्लोक I, 79.2 के में कहा गया है कि सूर्य की किरणें गतिमान बादलों से टकराती हैं। इस प्रकार, वर्षा वाले काले बादल गर्जन करते हैं । इसके बाद, आकाशीय विद्युत की रमणीय चमक के साथ फुहारे आती है । और अंत में बादलो की गर्जन के साथ वर्षा आती है।

अ ते सुपर्णा अभिनन्तं एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम्।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्पतन्ति मिहः स्तवयन्त्यभ्रा।। आर.वी.,I,79.2 ।।

ऋग्वेद के आगामी दो श्लोकों (V.54.2 और V55.5) बादलों वाली हवाओं को वर्षा का कारण बताते हैं, यथा

प्रवो मरुतस्तविषा उद्न्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः।
सं विघुता दधति वाशाति त्रितः स्वरन्त्यापोइवनापरिज्रयः।।आर.वी.V,54.2 ।।

भावार्थ: “हे मेघ-वायु, तुम्हारी सेनाएँ जल में धनी हैं, वे जीवन की रक्षक हैं, और आपसे उनका मजबूत बंधन हैं, वे पानी और भोजन में वृद्धि करते हैं, और वे उन तरंगों से सुशोभित हैं जो दूर-दूर तक हर जगह फैलती हैं। प्रकाश के साथ मिलकर, तिहरा -समूह (हवा, बादल और बिजली का) जोर से गर्जना करता है, और पृथ्वी पर आस-पास पानी गिरता है ”।

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
न वो दस्त्रा उप दस्यन्ति धनेवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत।। आर.वी. V,55.5 ।।

इस श्लोक में समझाया गया है कि बादल से चलने वाली हवाएँ समुद्र से पानी उठाती हैं और पानी से परिपूर्ण होकर वर्षा करती हैं। इसी प्रकार, हवाओं को वर्षा का कारण मानने वाले श्लोक I, 19.3-4 ; I, 165.1 में आसानी से पढ़ा जा सकता है; और उनके बादलों के साथ संबंध को ऋग्वेद के श्लोक I, 19.8 में इस प्रकार बताया गया है:

ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः। मरुद्भिरग्न आ गहि।।
या उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा भरुद्भिरग्न आ गहि।। आर.वी. I,19.3-4 ।।

अ ते तन्वन्त रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा।
मरुद्भिरग्न आ गहि।। आर.वी.I,19.8 ।।

उपरोक्त दोनों श्लोक वर्षा के कारण को बताते हैं, जो वर्षा के नीचे आने और शाश्वत कानून के क्रियान्वयन का नियंत्रण करते हैं।

ऋग्वेद के निम्नलिखित स्तुति गीत (I,38.7) से पता चलता है कि किस तरह से नमी वाली हवाएँ रेगिस्तान के क्षेत्र में भी कुछ वर्षा लाती हैं।

सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः।
मिहं कृण्वन्त्यवाताम्।। आर.वी.I,38.7 ।।

ऋग्वेद के श्लोक V 53.6- 7 से हमें ऋग वैदिक आर्यों के वर्षा करने में यज्ञ , वनों और बड़े जलाशयों के सकारात्मक प्रभाव के ज्ञान के बारे में भी पता चलता है।

आ यं नरः सुदानवो ददाशुर्षे दिवः कोशमचुच्यवुः।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः।।

ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्त्रुर्धेनवो यथा।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्त्तन्त एन्यः।। आर.वी.V.,53.6-7।।

ऋग्वेद का निम्नलिखित स्तुति गीत (V,53.17) इंगित करता है कि हवायें त्रेसठ प्रकार की होती हैं । हालांकि, उनके जलवायु और मौसम संबंधी निहितार्थ अभी भी अप्रकाशित हैं और उन्हें केवल पौराणिक कथाओं के रूप में माना जाता है।

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता दुदः।
यमुनायमधि श्रुतमुद्राधो गत्यं मृजे नि राधो अश्वयं मृजे।।आर.वी.V,53.17 ।।

ऋग्वेद में मानसून का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, लेकिन मारुत के भजन इसका संतोषजनक विवरण देते हैं। हालाँकि, बाद के काल में यजुर्वेद संहिता में मानसून स्पष्ट रूप से सलिलवात (तैथरिया ।V.4.12.3) के रूप में संदर्भित किया गया है।

वर्च इदं क्षत्र सलिलवातमुग्रम्।।
धर्त्री दिशां क्षत्रमिदं दाधारोपस्थाशानां मित्रवदस्त्वोजः।। टी.एस.,4.4.12.3 ।।

हालांकि, वर्षा वाली हवाओं का एक बेहतर संदर्भ ऋग्वेद (आर.वी.X.137.2 और ।,19.7) में दिया गया है।

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः।। आर.वी.X,137.2 ।।

ऋग्वेद के छंद, VIII, 7.4 में, मिह शब्द का अर्थ है धुंध, जिसे कोई आसानी से वर्षा से भिन्न नहीं कर सकता, यदि मात्रा को ध्यान में रखा जाता है, अन्य स्थानों पर इसका अभिप्राय वर्षा भी होता है।

वपन्त मरुतो मिहंप्रवेपयन्ति पर्वतान। यद्यामं यन्त वायुभिः।। आर.वी.VIII,7.4 ।।

पर्यावरण को शुद्ध करने और वर्षा करने में यज्ञ का महत्व ऋग्वेद (RV.X,98.4; X,98.6 / 12; X.98.7 और X, 98.11) में निम्नानुसार बताया गया है:

आनो द्राप्सा मधुमन्तो विशान्त्विन्द्र देह्याधिरथं सहस्त्रम्।
निषीद होत्रमृतुथा यजस्व देवान्द्रे वाये हविषा सर्प्य।। आर.वी.X.98.4 ।।

अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मन्पो देवोभिर्निवृता अतिष्ठन्।
ता अद्रवन्नाष्टिंणेन सृष्टा देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु।।आर.वी.X.98.6/12 ।।

ये भजन स्पष्ट रूप से वर्णन करते हैं कि सूर्य की किरणों द्वारा एकत्रित पानी को आकाश में सुरक्षित रूप से रखा जाता है, और वर्षा पैदा करने के लिए, किसी को जानकार पुजारी की मदद लेनी चाहिए, जो वर्षा के लिए उचित यज्ञ करेंगे। इसका तात्पर्य है कि वर्षा मौसम और बादल गठन का परिणाम है । अन्य तीन वेद, अर्थात् साम, यजुर और अथर्ववेद जलवायु विज्ञान और मौसम विज्ञान के बारे में कुछ अतिरिक्त जानकारी प्रस्तुत करते हैं जो ऋग्वेद में नहीं है। चूँकि ये तीनों वेद कालक्रमानुसार बाद के काल के हैं, इसलिए यह आसानी से देखा जा सकता है बाद के वैदिक काल में जल विज्ञान ने काफी आगे तक प्रगति की।

यह कि समुद्र, हवा और नमी की एक घटना है वर्षा, यह बाद के वैदिक काल से स्पष्ट रूप से ज्ञात था। तैथरिया के श्लोक में कहा गया है ,"हे मारुत तुम समुद्र से वर्षा गिराते हो, जो नमी से भरपूर हैं (TS.II, 4.8.2)"।

वृष्टयः उदीरयथा मरुतः समुद्रतो दूयं वृष्टिं वर्षयधा पुरीषिणः।
सृजा वृष्टिं दिव अद्रिभः समुद्रं पृण।। टी.एस.II,4.8.2 ।।

तैथरिया में, यह भी स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि वायु परिसंचरण वर्षा के होने में एक निश्चित भूमिका निभाता है। यह इस प्रकार कहा गया है: "वस्तुतः विविध रंगों जैसे होकर वे (पवन) परजन्या से वर्षा करते हैं (TS, II 4.9.I)।

मारुतनसि मरुतामोज इति कृष्णं वासः कृष्णंतूषं परि धत्त् एतद्वै
वृष्टये रुषं सरुप एव भूत्वा पर्जन्यं वर्षयति रमयत मरुतः श्येनमायिनमिति पश्चाद्वातं
प्रति मीवति पुरोवातमेव जनयति वर्षस्यावरुद्धयै वातमामानि जुहोति वायुर्वे वृष्टया ईशे
वायुमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै पर्जन्यं वर्षयस्य ष्टौ।। टी.एस.II,4.9.1 ।।

पश्चिम की हवा और वर्षा धारण करने वाले मानसून या पूर्व की हवा के विषय में इन पंक्तियों में बताया गया है - "हे मारुत रुको, तेज बाज़ (इन शब्दों के साथ), वह पश्चिम हवा को पीछे धकेलता है: वास्तव में वह वर्षा करने के लिए पूर्वी हवा पैदा करता है । वह हवा के नाम की पेशकश करता है, हवाएं वर्षा को नियंत्रित करती हैं (TS.II, 4.9.1)।

ऋग्वेदिक समय के दौरान, शायद आर्यों को यह भी पता था कि पौधों (या जंगलों) का वर्षा के होने पर कुछ प्रभाव था।

सौभययैवाह्त्या दिवो वृष्टमव रुन्धे मघुषा सं यौत्यपां वा एष ओषधीनां रसो
यन्मध्वभदय एवौषधीभयो वर्षत्यथो अद्भय एवौषधीभयो वृष्टिं नि नयति।। टी.एस.II,4.9.3 ।।

ऋग्वेद की तरह, यजुर वेद भी हवा, पानी और सम्पूर्ण पर्यावरण को शुद्ध करने में यज्ञ (बलिदान) के प्रभाव के बारे में बताता है, जो वर्षा के होने में मदद करता है। यजुर वेद के स्तोत्र ।,12 इस प्रकार हैं:

पावत्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाभयाच्छिदेण पवित्रेण सूर्यस्थरश्मिभिः।
देवीरापोअग्रेगुवोअग्रेपवोग्रइममघ यज्ञनयताग्रे यइपतिंसुधातु यज्ञपतिंदेवयुवम्।। वाई.वी.I,12 ।।

इस मंत्र (भजन) में कहा गया है कि जल, वायु आदि पदार्थ प्रदूषित हो जाते हैं और यदि वे आग (यज्ञ की मदद से) से छोटे छोटे कणों में टूट जांयेंगे तो वे शुद्ध हो जायेंगे और शुद्ध वर्षा होगी । यजुर वेद के भजन VI.10 में कहा गया है कि यज्ञ में प्रयुक्त सामग्री सूर्य के आकर्षण के कारण छोटे छोटे परमाणुओं में विभाजित हो जाती है और आकाश में चढ़ जाती है । इससे भरपूर वर्षा होती है । इसी तरह तथ्यो को यजुर वेद के VI - 16 और XIII-12 भजन में भी इस प्रकार प्रकट किया गया है:

अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु सवात्तं चित्सद्देवहविः।
सं तेप्राणो वातेन गच्छर्तो समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा।। वाई.वी.VI,10 ।।

वेदों में कई स्थानों पर धुंध को नीहार की संज्ञा इस प्रकार दी गयी है (वाजसनेयी संहिता 17.31):

नतंविदाथ य इमा जजानान्यघुष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेणप्रावृता जल्पा चासृनृप उक्थशासश्चरन्ति।। वी.एस. XVII,31 ।।

यजुर वेद में जल निकायों और महासागरों पर धुंध या कोहरे की अपार सघनता के बारे में ज्ञान था "आप धुंध से भरे महासागर हैं"। यह भी ज्ञान था कि शुद्ध पानी वर्षा के माध्यम से सभी चीजों को शुद्ध करता है “संभवतः जल, माँ के सामान हमारे शरीरो को शुद्ध करता है (YV.IV.2-3)।

आपो अस्मान्मातरः शुध्रयन्तु घृतेन घृतप्वः पुनन्तु।
विश्व हि रिप्रं प्रवहन्त देवीः।

उदिदाभयः शुचिरा पूत एमिदीक्षातपसोस्तनूरसि
तां त्वा शिवा शग्मा परि दधे भद्रं वर्ण पुष्यन्।। वाई.वी.IV.2 ।।

सूर्य को बादलों के फैलाव और वर्षा के कारण के रूप में जाना जाता था "हे सूर्य, तुम पृथ्वी के विभिन्न भागों में वर्षा लाते हो "

महीनां प्योसि वचोदा असि वर्चो मे देहि।
वृत्रस्यासि कनीनकरचक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहिं।। वाई.वी.IV,3 ।।

साम वेद वर्षा के भगवान को लुभाने पर अधिक जोर देता है। यह स्पष्ट रूप से कहता है कि सूर्य की शाश्वत शक्ति बादलों में प्रवेश करती है और इस तरह वर्षा का कारण बनती है (एस.वी.पूर्व ॥. 179)। यह भी बताया गया है कि सूर्य हवा की मदद से घुमती पृथ्वी पर वर्षा का पानी बरसाता है (एस.वी.पूर्व॥. 148) यथा ;

यदिन्द्रो अनयाद्रितो महीरयो वृषन्तपः।।
तत्र पूषा भुवत्सचा।। एस.वी.पूर्व II.179 ।।

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृ त्राण्यप्रतिष्कुतः।
जधान नवतीर्नव।। एस.वी.पूर्व II. 148 ।।

साम वेद के अन्य श्लोक (V.562; अंतिम V.906; और अंतिम X.1317) वर्षा की प्रक्रिया के साथ भगवान की दया और महानता और शक्ति पर चर्चा करते हैं। श्लोक SV अंतिम, XX.1802 में स्पष्ट रूप से भगवान द्वारा भारी वर्षा के कारण महासागरों, नदियों आदि के निर्माण का उल्लेख है।

असावि सोर्मो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्।
पुनामो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनि घृतवन्तमासदत्।। एस.वी.पूर्व,V.562 ।।

आ पवमान सुष्टुति वृष्टि देवोम्यो दुवः।
इषे पवस्व संयतम्।। एस.वी.अंतिम,V.906 ।।

त्व सिन्धू खासृजोधराचो अहन्नहिम्।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिसे विश्वंपुष्यसि वार्यम्।
तन्त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्थकेषां ज्यांकाअधिधन्वसु।।एस.वी.अंतिम,XX.1802 ।।

अथर्ववेद में हमें इसी तरह की अवधारणाओं और जलविज्ञान संबंधी ज्ञान मिलता है जैसा अन्य वेदों में निहित हैं। उदाहरण के लिए, श्लोक (I,4.3), इस प्रकार है:

अपोदेवी रुपं ह्वये यत्र गावः पिवन्त नः।
सिन्धुभयः कर्त्व हविः।। ए.वी.I,4.3 ।।

इस श्लोक में सूर्य की किरणों के ताप से वाष्पीकरण और बाद में जीवन देने वाली वर्षा की अवधारणा का पता चलता है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त (XII,1.51) में एक हिंसक धूल भरे तूफ़ान के बारे में वर्णन है, जो पेड़ों को उखाड़ फेंकता है और इसे मातरिश्वा: कहा गया है ।

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्त हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि।
यस्यां वातो मातरिश्येयते रजांसि कृण्वंच्यावयंश्च वृक्षान्।
वातस्य प्रवामुपवामनुवात्यर्चिः।। ए.वी..XII,1.5 ।।

ऋग्वेद के विभिन्न भजनों से संकेत मिलता है कि वैदिक साहित्य पौराणिक रूप से भारतीय वायुमंडलीय घटनाओं, विशेष रूप से मानसून और वर्षा ऋतु के मौसम और आमतौर पर उनके साथ आने वाली प्रचंड आंधी तूफान का वर्णन करता है ।

ऋग्वेद के बाद, सतपथ ब्राह्मण में भी तिरसठ प्रकार की हवाओं को माना गया है, (SB भाग ।2.5.1.13)। उसी पाठ में सफ़ेद पाले को पश्वा नाम से पुकारा गया है ।

त्रिः प्रष्टत्वा मरुतो वावृधाना उस्त्रा इव राशयो यज्ञियासः।
उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना ह्विषा विधेम।। आर.वी. VIII,96.8 ।।

तैथिरिया अरण्यका (I.9.8) में कहा गया है कि वायुमंडल में सात प्रकार की वायु धाराएं या हवाएं हैं जो उसी तरह के सात प्रकार के बादल पैदा करती हैं। ये हैं (1) वराहव (2) स्वतपस (3) विधन्महस (4) धूपम (5) श्वापय (6) गृहमेघ और (7) आशिमिविद्विष। वराहव उन परिस्थितियों का निर्माण करता है जो संघनन और अच्छी वर्षा के लिए जिम्मेदार हैं। स्वतपस वह है, जिसके तापमान की स्थिति पर ऊष्मा या सूर्य का बहुत कम प्रभाव पड़ता है और शायद यह अधिक ऊंचाई पर होता है और वर्षा के लिए जिम्मेदार होता है। मंत्र का मूलपाठ इस प्रकार है:

तातनुक्रमिष्यायः वरावस्स्वतपसः	।	विघुन्मय सो धूपयः।।
श्वापयोगृहमेघाश्वेत्येते	।	पे चेमेशिमिविद्विपः।
पर्जन्यास्सप्त पृथिवीममि वरषन्ति	।	वृष्टभिरति।। ताई.अरा..,I,9.8 ।।

विघुन्महस आंधी को जन्म देता है; धूपम में कुछ गुप्त गुण या सुगंध होती है जो यह जल्दी से विस्तार कर उन वस्तुओं को प्रदान करता है जिनके साथ यह संपर्क में आती है, और

गृहमेघ वातावरण की नमी या आर्द्रता को प्रभावित करता है। ये छह एक ही वंश के हैं और एक ही या समान गतिविधि क्षेत्र रखते हैं । आशिमिदिद्विष का संबंध अन्य वंश से है और उसका भौगोलिक प्रदेश या क्षेत्र पूर्ववर्ती छह से अलग है; हालांकि, यह कृषि उद्देश्यों के लिए अत्यधिक अनुकूल है। बादलों के ये सात वर्ग सात प्रकार की हवाओं के साथ वर्षा लाते हैं। तैथिरिया अरण्यक के पद I.10.9 में, दो और प्रकार के बादलों का उल्लेख किया गया है (ताई, आरा, I, 10.9)। ये हैं: (1) शम्बर या शाम्बर और (2) बहुसोमगी – पहले वाला प्रचुर वर्षा के लिए जिम्मेदार है, और बाद वाले को "पानी के गतिमान वर्षा मेघ झरने " के रूप में पहचाना जाता है। इस प्रकार, उनके गुणों के साथ कुल नौ प्रकार के बादलों को तैथिरिया अरण्यका में पहचाना गया है।

सवितारं वितन्वन्तम्। अनुवध्नाति शाम्वरः । आपपूरषम्ब्रश्वैव।
सवितांरेपसोभक्त।। I,10.8 ।।

त्यं सुतप्तृं विदित्वैव। बहुसोमगीरं वशी।।
अन्वेति तुयोवाक्रियां तम्। आ यसूयान्श्सोमतृप्सूषु।। ताई.अरा.,I,10.9 ।।

इसी प्रकार से, महाकाव्यों के दौरान हमें बादलों, वर्षा, वाष्पीकरण, हिम, तूफानों आदि के बारे में जानकारी मिलती है। रामायण के छंद VII.4.3 में तीन प्रकार के बादलों के बारे में बताया है - ब्राहम (ब्रह्मा से उत्पन्न), अग्नेय (अग्नि से उत्पन्न) और पक्षज (एक पर्वत गुच्छे पर निर्मित)। सफ़ेद, लाल, नीले और स्लेटी बादलों का भी उल्लेख महाकाव्य (V.1.81) में इस प्रकार किया गया है:

पाण्डुरास्णवर्णानि नीलमाज्मिष्ठकानि च।
कपिना कष्यमाणनि महाभ्राणि चकाशिरे।। राम. V,1.81 ।।
हरितास्णवर्णानि महाभाणि चकाशिरे।। राम. V,57.7 ।।

जलवायु संबन्धी अनपेक्षितता या वर्षा की अनुपस्थिति का उल्लेख रामायण (I.9.9) में इस प्रकार किया गया है:

अनावृष्टिः सुघोरा वै सर्वलोकभयावहा।। राम. I,9.8 ।।
अनावृष्ठयां तु वृत्तायां समानीय प्रवक्ष्यति।। राम. I,9.9 ।।

यहाँ, यह अप्रत्यक्ष रूप से धूल, कोहरे, पाले और धुंध से मुक्त वातावरण की बात करता है। इसी तरह, निशाचर आकाश (नीहार या तुषार से चंद्रमा) की स्थिति का रामायण (I.29.25) में उल्लेख इस प्रकार किया गया है:

शशीव गतनीहारः पुनर्वसुसमन्वितः।। राम. I,29.25 ।।

धुंध और तापमान में वृद्धि के माध्यम से इसके गायब होने का उल्लेख रामायण के ।, 55.25 श्लोक में, धुंध और भीषण ठंड का उल्लेख ।।। 16.12 में, पश्चिमी ठंडी हवाओं के उसके (पाले) कारण और ठंडी होने का उल्लेख ।।।, 6.15 में, पृथ्वी की सतह के आसपास के क्षेत्र में बहुत घनी धुंध का उल्लेख ।।।. 16.23 में , नदी संरचना की सतह पर लटकी पानी वाष्प का उल्लेख ।।। ,16.24 में , किनारों की रेतीली सीमाओं पर ओस के गठन का उल्लेख ।।।, 16.24 में और बर्फबारी का उल्लेख ।।। , 16.25 में किया गया है । ये श्लोक यहाँ दिए गए हैं:

वदतौ वै वसिष्ठस्य या भैरिति मुहुर्मुहुः।
नाशायाम्यघः गाधेयंनीहारमिव भास्करः।। राम. I,55.25 ।।

निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः।
शीतवृद्वतरायामास्त्रियाना यान्ति साम्प्रतम्।। राम. **III,16.12** ।।

प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्वश्च साम्प्रतम्।
प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः।। राम. **III,16.15** ।।

अवश्यायतमोनद्वा नीहारतमसावृताः।
प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्या वनराजयः।। राम. III,16.23 ।।

वाष्पसंक्षन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसाः।
हिमद्रिवालुकैस्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम्।। राम. III,16.24 ।।

तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद् भास्करस्य च।
शैत्यादगाग्रस्थमपि प्रायेण रसवज्जलम्।। राम. III,16.25 ।।

रामायण के श्लोक ।V, 1.15 में पहाड़ी हवाओं के बारे में बताया गया है। एक अन्य श्लोक (VI, 78.19) में हम धूल भरी, सूखी और झोके वाली हवा के बारे में पढ़ते हैं । बाद में रामायण (VI, 106.21) में प्रचण्ड तूफान या बवंडर का भी उल्लेख किया गया है (VI,106.21, वाता मण्डिलनस्तीवा:।

शैलकंदर निष्क्रान्तः प्रगीत इव चानिलः।। राम. IV,1.15 ।।

रामायण की तरह, महाकाव्य महाभारत में भी जल विज्ञान से संबंधित बहुमूल्य जानकारी है । महाकाव्य के बारहवें स्कंद (स्कंद, क्षेत्र, XII, 328.31) में वायु-मंडल को सात क्षेत्रों में विभाजित किया गया है और "वह वायु जो ऊपर दिए नम्बरों में पहले स्थान पर है और जिसे पवह नाम से जाना जाता है, पहले क्रम के साथ, धुएं और गर्मी से पैदा हुए बादलों को संचालित करती है । इस प्रकार, इस समय के दौरान, बादलो के घटको का भी पूर्वानुमान था। यह हवा आकाश से गुजरती है और बादलों में पानी के संपर्क में आती है (एम.बी. .XII, 328.36) इस प्रकार है:

पृथिव्यायन्तरिक्षे च यत्र संवान्त वायवः।
सप्तैतेवायुमार्गा वै तान् निवोधानुपूर्वशः।। एम.बी. XII,328.31 ।।

प्रेरयत्यभ्रसंधातान धूमजांश्चोष्मजांष्व यः।
प्रथमः प्रथमे मार्गे प्रवहो नाम योनिलः।। एम.बी. 328.36 ।।

दूसरी वायु जिसे आवह कहा गया है, तेज आवाज के साथ बहती है (एम.बी. . XII329.37)। जो हवा चारों महासागरों से पानी पीती है और उसे चूसती है, इसे बादलों को देती है, उन्हें वर्षा के देवता के सामने प्रस्तुत करती है, यह तीसरे नंबर पर है और इसे उत्दह के रूप में जाना जाता है (एम.बी. . XII328.38-39-40)।

अम्बरे स्नेहमम्येत्य विधुदभयश्च महाघुतिः।
आवहो नाम संमवाति द्वितीयः श्वसनो नदन्।। एम.बी. .XII,328.37 ।।

उदयं ज्योतिषां शश्वत सोमादीनां करोति यंः।
अन्तर्देहेषु चोदानं यं वदान्त मनीषिणः।। एम.बी. .XII,328.38 ।।

यश्चतुभर्यः समुद्रेभयो वायुर्धारियते जलम्।
उद्वत्याददते चापो जीमूतेम्योम्बरे बिल।। एम.बी. ,XII,328.39 ।।

योदिभः संयोज्य जीमूतान पर्जन्याय प्रथच्छति।
उत्दतो नाम बंहिष्ठस्तृतीयः स सदागतिः।। एम.बी. ,XII,328.40 ।।

हवाएँ जो बादलों का सहारा देती हैं और उन्हें विभिन्न भागों में विभाजित करती हैं, जो उन्हें वर्षा करने के लिए पिघला देती हैं और उन्हें एक बार फिर जमा देती हैं, जिन्हें बादलों की गर्जना वाली आवाज़ के रूप में पहचाना जाता है, उन्हें संवह नाम से जाना जाता है- पांचवीं परत

को विवह कहा जाता है और छठी को परिवह कहा जाता है। सातवी परत जिसे परावह कहा जाता है शायद कुछ लौकिक क्षेत्र को संदर्भित करती है (एम.बी. .XII.328.41-42-43-47-48) ।

समूहयमाना बहुधा येन नीताः पृथक घनाः।
वर्षमोक्षकृतारम्भास्ते भवन्ति घनाघनाः।। एम.बी.XII,328.41 ।।

संहता येन चाविद्वा भवन्ति नदतं नदाः।
रक्षणार्थाय सम्भूता मेघत्वमुपयान्ति च।। एम.बी.XII,328.42 ।।

यो सौ वहति भूतानां विमानानि विहायसा।
चतुर्थः संवहो नाम वायुः स गिरिमदिनः।। एम.बी.XII,328.43 ।।
दारुणोत्यातसंचारो नभसः स्तनयित्नुमान।
पज्चमः स महावेगो विवहो नाम मारुतः।। एम.बी.XII,328.48 ।।

षष्ठः परिवहो नाम स वायुर्जयतां दरः।। एम.बी.XII,328.45 ।।

येन स्पृष्टःपराभूतो यात्येव न निवर्तते।
परावहो नाम परो वायुः स दुरतिक्रमः।। एम.बी.XII,328.52 ।।

यहां, पांच स्थानों पर, प्रयुक्त किये गये पारिभाषिक शब्द हवा का वास्तविक अर्थ एक गोला या परत है। ये पांच नाम पुराणों और अन्य बाद के साहित्य में भी पाए गए हैं। महाकाव्य बादलों के चार वर्ग देकर भी बादलों का एक और वर्गीकरण देता है। बादलों के चार प्रकार हैं संवर्तक, वलाहक (एम.बी. , VIII, 34.28), कुण्डधार (XII 271.6) और उतंक (एम.बी. XIV 55.35-36-37)। वलाहक बादल वायुमंडल की विवह परत (पहले वर्णित) में बनते हैं। रेगिस्तानी क्षेत्र में वर्षा लाने वाले बादलों को उतंक कहा जाता है। बादलों का ये वर्गीकरण रामायण और पुराणों में वर्णित वर्गीकरण से अलग है।

सोथ सौम्येन मनसा देवानुचरयन्तिके।
प्रत्यष्यज्जलधरं कुण्डधारमवस्थितंम्।। एम.बी. ,XII,271.6 ।।

तदा मरौ भविष्यन्ति जलपूर्णाः प्योधराः।
रसवच्च प्रदास्यन्ति तोयं ते भगुनन्दन,
उत्तक्ड़मेघा इत्युक्ताः ख्याति यास्यन्ति चापि ते।। एम.बी.,XIV,55.36 ।।

लगभग 600-700 ईसा पूर्व में, कणाद ने अपने वैशिका सूत्र में पानी की संघनन और विघटन प्रक्रिया का उल्लेख किया है (वैस. सूत्र, 2.8)। उन्होंने टिप्पणी की है "पानी का संघनन

और विघटन आग या गर्मी के साथ संयोजन के कारण है"। मेघगर्जन की घटना के बारे में, उनका कहना है कि " मेघगर्जन आकाश के प्रकाश के प्रवेश का एक निशान है (वैस.सूत्र,.V, 2.9)", यानी यह मेघ गरजना है जो प्रवेश का अधिकार देती है। वह फिर कहता है (वैस.सूत्र. वी, 2.11) कि मेघगर्जन के परिणामस्वरूप पानी के साथ संयोजन और बादल से विघटन होता है। यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि महान ऋषि जानते थे कि मेघगर्जना धनात्मक और ऋणात्मक आवेशित के बादलो के प्रभाव के कारण होती है।

अपां सङ्घातो विलयनज्च तेजः संयोगात्।। वै.सूत्र V,2.8 ।।
तत्र विस्फूर्ज थुर्लिङ्गम्।। वै.सूत्र V,2.9 ।।
अपां संयोगाद्विभागाच्च स्तनयित्नोः।। वै.सूत्र V,2.11 ।।

वर्षा की बूंदों के गिरने और धाराओं के प्रवाह पर चर्चा करते हुए, उन्होंने आगे संयोजन के अभाव में गुरुत्वाकर्षण से पानी के गिरने के कारणों को प्रस्तुत किया है (वैस.सूत्र. वी, 2.3) अर्थात वर्षा के रूप में पानी के गिरने में, गुरुत्वाकर्षण गैर-संयोगी कारण है।

अपां संयोगाभावे गुरुत्वात् पवनम्।। वै.सूत्र V,2.3 ।।

श्लोक V 2.4, में यह कहा गया है कि धारा या गिरते हुए पानी या वर्षा की बूंदों के आपसी संयोजन से बनी विशाल जलीय इकाई का दूर दूर तक प्रगमन, गुरुत्वाकर्षण के यथार्थ कारण और तरलता के गैर- संयोगी कारण द्वारा निर्मित होता है।

द्रवत्वात स्यन्दनम्।। वै.सूत्र V,2.4 ।।

वाष्पीकरण, बादल बनने, बादलों के वर्गीकरण और हवाओं या वायुमंडल के क्षेत्रों (वातस्कन्ध) के साथ उनके संबंधो पर भी कई पुराणों (वायु अध्याय 51, लिंगा खंड 1, अध्याय 36, मत्स्य खंड.। अध्याय 54) में काफी संतोषजनक रूप से चर्चा की गयी है। बादलों की सामान्य उत्पत्ति के बारे में बताते हुए वायु पुराण (51.22-25) में कहा गया है कि दुनिया की सभी चल या अचल वस्तुओं में नमी होती है और आतपन या सूर्य की किरणों के कारण उस नमी का वाष्पीकरण होता है और इस प्रक्रिया से बादलों की उत्पत्ति होती है। अर्थात

आर्क तेजोहिभूतेभयोहयादत्ते रश्मिमर्जलम्।। वायु,51.23 ।।

मेघानां पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते।
अग्नेया ब्रह्मजाश्चैव वक्ष्यामि पृथाविधाः।
त्रिधा घनाः समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि संभवम्।। वायु 51.28 ।।

अग्नेयास्त्वर्णजाः प्रोक्तास्तेषां तस्मात्प्रवर्तनम।
शीत दुर्दिनवाता ये स्वगुणास्ते व्यवस्थिताः।। वायु 51.29 ।।

जीमूता नाम ते मेघा येभयो जीवस्य संभवाः।
द्वितीयं प्रवहं वायु मेघास्ते तु समाश्रिताः।। वायु 51.36 ।।

उपरोक्त श्लोको में बताया गया है कि जो बादल पानी देते या छिड़कते हैं, उन्हें मेघ के कहते हैं और जो कोई भी वर्षा को नहीं करते उन्हें अभ्र के रूप में जाना जाता है- तीन प्रकार के बादल होते हैं (1) आग्नेय (2) ब्रहमज (3) पक्षज। ये क्रमशः चक्रवात (गर्मी और सूर्यविकिरण सम्बन्धी) संवहनीय (उत्तरी महाद्वीप, साइबेरिया और भूमध्यरेखीय क्षेत्र में होने वाली) और पर्वतीय (पर्वत के पार्श्व भाग में घटित और आगे बढ़ने वाली) वर्षा के प्रकार हैं। उपर्युक्त पुराणों के अनुसार, आग्नेय सर्दियों के मौसम में होती है और यह बिजली की चमक और गड़गड़ाहट से रहित होती है और इसका विस्तार बहुत अधिक होता है और पहाड़ के तलहटी क्षेत्रों में होती है। यह एक या दो मील के दायरे में वर्षा लाती है। यह विवरण आधुनिक दिनों के निम्बस (वर्षा मेघ) के बहुत निकट है। बहमज बादलों की संवहन धाराओं के कारण उत्पन्न होते हैं। वे लगभग एक योजन (पाँच या आठ मील) त्रिज्या के क्षेत्र में वर्षा करते हैं। संभवत: ये क्यूम्यलोनिम्बस हैं। पुस्करा-वर्तक (पश्वरावत) बादलों का उद्गम पहाड़ों के पंखों (पक्षसभवा)से या पहाड़ो में होता है । उनके अनेक रुप होते हैं और वे गहरी ध्वनि का उत्पन्न करते हैं। वे विपुल जल से भरे होते हैं और अत्यधिक वर्षा लाते हैं जो अत्यंत विनाशकारी होती है। यह विवरण काफी हद तक आधुनिक वर्ग के अल्टोस्ट्रेटस के अनुरूप है।

मत्स्य पुराण (भाग ।, अध्याय.54) भी बादलों के बारे में और अधिक विस्तृत और वैज्ञानिक जानकारी प्रस्तुत करता है। इसमें कहा गया है कि बादलों के कारण जीवन है। ये बादल अवहा नामक वायु पर लटके रहते हैं । वे आकार बदलते रहते हैं और एक योजन तक जाते हैं तथा वर्षा का रूप लेते हैं। उन्हें वर्षा का स्रोत कहा जाता है (श्लोक10)। अगर श्लोक 17,18 और 19 की लाक्षणिक रूप से व्याख्या की जाए, तो वे नामकरण के अनुसार बादलों के

चार अन्य वर्ग देते हैं , गज, पर्वत, मेघ और भोगी। श्लोक 17 में गज बादलों के चार और वर्गों को पहचाना जा सकता है।

विषुवद्गहवर्णश्च सर्वमेतद ध्रुवेरितम्।
जीमूता नाम ते मेघा यदेभयो जीव सम्भवः।। मत्स्य, I,54.9 ।।

द्वितीय आवहन वायुर्मेघास्ते त्वभिसंश्रिताः।
इतोयोजनमात्राच्च अध्यर्द्धविकृताअपि।। मत्स्य,**I,54.10** ।।

तेषामप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः।
तेषां श्रेष्ठश्च पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः।। मत्स्य,I,54.17 ।।

गजानां पर्वतानाज्च मेघानां भोगिभिः सह।
कुलमेकं द्विधाभूतं योनिरेका जलं स्मृतम्।। मत्स्य,I,54.18 ।।

पर्जन्य और दिग्गज हेमंत ऋतु में वर्षा करते हैं और वे कृषि विकास के लिए बहुत उपयोगी हैं, नीचे दिए गए श्लोक में कहा गया है:

पर्जन्योदिग्गजाश्चैवहेमन्ते शीतसम्भवम्।
तुषारवर्ष वर्षान्ति वृद्वां ह्यन्नविवृद्वये।। मत्स्य,I,54.19 ।।

मत्स्य पुराण (I, 54.33) में संक्षेप में आर्द्रताग्राही नाभिक पर संघनन और वर्षण की प्रक्रिया बहुत सावधानी से वर्णित है:

नियच्छत्यापो मेधेभवः शुक्लाः शुक्लैस्तुरश्मिभिः।
अभ्रस्थाः प्रयतन्त्यापोवायुनासमुदीरिताः। मत्स्य,I,54.33 ।।

अर्थ: "बादलों से पानी (वाष्प) हवा (अर्थात् वायु की आर्द्रताग्राही सामग्री) के संपर्क में आने पर वर्षा के आकार में गिरता है"।

विष्णु पुराण (II, 9.11-12) बहुत ही वैज्ञानिक रूप से वायुमंडलीय नमी के चार स्रोतों, "गौरवशाली सूर्य, मैत्रेय, चार स्रोतों अर्थात् समुद्र, नदियों, पृथ्वी और जीवित प्राणियों से आर्द्रता का वर्णन करता है।"

अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः।
संस्कारं कालजनितं मैत्रैयासाघ निर्मलाः।। विष्णु,II,9.11 ।।

सरत्ससमुद्रभौमास्तु तथापः प्राणिसम्भवाः।।
चतुष्प्रकाश भगवानादन्ते सविता मुने।। विष्णु,II,9.12 ।।

प्रसिद्ध कवि कालीदास (100 ई.पू.) भी बादलों और संबद्ध घटनाओं के बारे में बहुत कुछ जानते थे। उन्होंने इस प्रकार बादल को परिभाषित किया है "यह धुएं, बिजली, पानी और हवा का एक संयोजन है" (पूर्वामेघ श्लोक 5)। अन्य स्थानों पर (पूर्वामेघ, श्लोक 6) कवि ने दो प्रकार के बादलों का नाम दिया है यथा पुष्कर और आवर्तक ।

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्नपातः व्क मेघः।
सन्देशार्था व्क पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।। मेघदूतम, पूर्वामेघ 5।।

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरुपं मघोनः मेघदूतम, पूर्वामेघ 6 ।।

मृच्छकटिका (600 ई.) एक प्रकार के बादल को संदर्भित करता है जिसमें से एक बाल्टी की तरह वर्षा निकलती है। एक अन्य संदर्भ में, प्रसिद्ध नाटक एक द्रोणिका से निकलने वाली एक विशेष प्रकार की वर्षा द्रोणवृष्टि को संदर्भित करता है (X.39)।

कोयमेवंविधे काले कालपाशास्थिते मयि।
अनावृष्टिहते सस्ये द्रोणमेघं इवोदितः।। मृच्छकटिका, X.26 ।।

केयमभयुघते शस्त्रे मत्युवक्त्रगते मयि।
अनावृष्टिहते सस्ये द्रोणवृष्टिरिवागता।। मृच्छकटिका,X.39 ।।

कालिदास द्वारा कुल मिलकर चार प्रकार के बादलों की बात की गई है। वे हैं आवर्त, संवर्त, पुष्कर और द्रोण । आवर्त वर्षा नहीं लाता है; संवर्त वर्षा बहुतायत में देता है, पुष्कर वर्षा की बाढ़ का कारण बनता है और द्रोण कृषि और मानव जाति के लिए सबसे अधिक अनुकूल है। यह संक्षेप में निम्नलिखित पंक्तियों में कहा गया है –

आवर्तो निर्जलो मेघः संवर्ततश्च वहूदकः।
पुष्करो दुष्करजलो द्रोणः शस्यप्रपूरकः।।
कालिदास ग्रंथावली,अभिदान कोष,P.154 ।

सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पुस्तकालय (सरस्वती भवन पुस्तकालय) में एक पांडुलिपि ग्रंथ, जिसका शीर्षक मेघमाला है, उपलब्ध है। जैसा कि नाम से ही पता चलता है, यह जलवायु विज्ञान और विशेषकर बादलों के विज्ञान का एक ग्रन्थ है । संवाद की सामग्री और शैली के आधार पर त्रिपाठी (1969) ने यह स्थापित करने की कोशिश की है कि मेघमाला रुद्रायमालतंत्रम (लगभग 900 ईस्वी) का एक हिस्सा है; मेघमाला के 11 अध्याय हैं। मेघमाला का पहला अध्याय अन्वेषण के साथ प्रारंभ होता है।

मेघस्तु कीदृशादेव कथं विद्युत्प्रजायते।
कीदृशं वर्णरूपं तु शरीर तस्य कीदृशम्।।

(मेघमाला, पांडुलिपि संख्या 37202, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी)

पहला अध्याय यह बताता है कि बादल क्या हैं, बिजली कैसे पैदा होती है, प्रकृति, बनावट सामग्री और बादलों के रंग क्या हैं? बाद में श्लोक 20,21,22 में पारंपरिक रूप से भारतीय शैली में वर्णन किया गया है कि पहाड़ बादलों को नियंत्रित करते हैं। श्लोक 32 से 68 तक हम पता चलता है कि बादलों के बड़े विभाजन में बारह प्रजातियां शामिल हैं और उन्हें 1- सुबुध 2- नंदशाला 3- कन्यद 4- पथुश्रवा 5- वासुदी 6- तक्षक 7-वकर्त 8- सारवत 9- हेमकाली 10- जलेंद्र 11- वज्रदंष्ट और विष्णुप्रभ- के रूप में नामित किया गया है। लेकिन इनका कोई वैज्ञानिक विवरण सुसज्जित नहीं है। अध्याय ॥ विभिन्न वर्षों की, उनकी वर्षा और उनमें से प्रत्येक की आर्थिक विशेषताओं या स्थितियों को संदर्भित कर प्रत्येक पर प्रकाश डालता है। तीसरा अध्याय वर्षा, जलवायु विज्ञान और मनुष्यों की आर्थिक स्थिति, राज्य की बहुतायत एवं कमी की स्थिति और विभिन्न फसलों के उत्पादन पर ज्योतिषीय प्रभाव का वर्णन करता है। आठवें अध्याय में साल के बारह महीनों में वर्षा की प्रकृति और अन्य मौसम संबंधी स्थितियों पर चर्चा की गई है। कार्तिक (अक्टूबर - नवंबर) के बारे में लेखक का कहना है कि इस महीने के दौरान विविध रंगों के बादल बिखरे हुए हैं नजर आते हैं। पोष में (दिसंबर - जनवरी) यदि आकाश बादलों से घिरा रहता है, तो एक बहुत अच्छा लक्षण है। यदि माघ का महीना (जनवरी - फरवरी) सामान्यतः ठंडा नहीं होता है (या कोई ठंढ नहीं है) तो फाल्गुन (फरवरी - मार्च) में उत्तर-पूर्वी हवाएँ अच्छी वर्षा लाती हैं।

मासि मासि कथं देवि कीदृशं गर्भलक्षणम्।
किं वातं किं घनं युक्तं कस्य कालेन वर्षति।।

कार्तिके शुक्ल नन्दायां पञ्चरुपाणि यो भवेत्।
अभ्राणि श्वेतवर्णानि रक्तर्णानि यो भवेत।।

पतिवर्णानि यो मेधा हि कृष्णवर्णश्च भवेत्।
कांस्यवर्णो भवेघस्तु ताम्रवर्णस्तथा भवेत्।।

न माघोपतितं शीतं ज्येष्ठे मूलं न वृष्टिकृत्।
नार्दायां पतितं तोयं दुष्टकालस्तदा भवेत्।।

तदा देवि भविष्यन्ति सुभिक्षं क्षेमवेव च।
पूर्वोत्तरजवातेन रात्र्यन्ते जलमुत्तम्।। मेघमाला, P. 14-38 ।।

मेघमाला के अध्याय IX में बादलों, हवाओं और बिजली पर चर्चा है। सबसे पहले, यह विभिन्न आकृतियों और बिजली की दिशाओं के साथ वर्षा के सहसंबंध पर चर्चा करता है। फिर हमें बताया गया है कि उत्तर-पूर्व की हवा समृद्धि के लिए प्रवाहकीय है, दक्षिण की हवा लोगों के लिए अच्छी है, दक्षिण-पश्चिमी हवा दुख का कारण बनती है, पश्चिमी चावल के उच्च उत्पादन के लिए बहुत फायदेमंद है, उत्तरीय हवा भी लोगों की भलाई के लिए अनुकूल है, और यह समृद्धि उत्पन्न करती है।

पूर्वे विधुत्करामेघा अग्नियां जलशोषिणी।
दक्षिणे रौरवं घोरं नैऋत्यां तापमादिशेत्।।

शुभिक्षं पूर्ववातेन जायते पात्र संशयः।
दक्षिणे तु क्षेमकरो नैऋत्यां दुः खदो भवेत।।

वारुण्यां दित्यंधान्यानि वायत्यांवायुखे भवेत्।
उत्तरे शुभदो देवि ऐशान्यां सर्वसम्पदः।। मेघमाला, P. 47-48 ।।

मेघमाला का अध्याय X बादलों के प्रसार से संबंधित है और बादलों की बारह प्रजातियों को दोहराते हुए, जिनका पहले से ही उल्लेख किया गया है, इसके अलावा एक और वर्गीकरण को शामिल किया गया है जिसमें सात प्रजातियां शामिल हैं जैसे कि अम्बुद, गोलक, गिरि, आरोपक, सपर्वत, खिखिन्द और कोटिवार ।

विश्वकोशीय तांत्रिक साहित्य भी जल विज्ञान पर जानकारी देने में पीछे नहीं है । अभिनवगुप्त के तंत्रालोक से, हम जलवायु विज्ञानं और मौसम संबंधी कुछ महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इसके आह्निका में देशाध्व प्रकाशन में हवाओं, बादलो, हवाओं के मार्ग और संबद्ध घटनाएं (तांत्रलोक का V खंड) (त्रिपाठी , 1969) का वर्णन किया गया है। यह दस वायु पथो को संदर्भित करता है, जो शायद केवल इस पाठ के लिए विलक्षण हैं। वो दस वायु पथ हैं : 1- वितव 2- ऋतार्धि 3- वज्राइक 4- वैद्युतं 5- रैवत- 6- विषावर्त (दुर्जय) 7- परावह 8- आवह 9- महावह

और 10- महा परिवह (खंड V 121.138)। ये अंतरिक्ष में बढ़ती ऊंचाई के अनुसार व्यवस्थित होते हैं। उत्कृष्ट तांत्रिक कार्य ने दस प्रकार के बादलों को पहचाना है : 1- मूकमेघ 2. प्राणिवर्षी 3. विष्वारिवर्षी 4. स्कान्द 5. संवर्त 6. ब्राहम 7. पुष्कर 8. जीमूत 9. ईशक्रत, और 10- महेशिकृत (कपालोत्थ)। ये प्रकार भी बढ़ती ऊंचाई के अनुसार होते हैं । भारतीय साहित्य में ऐसा शायद पहली बार हुआ है जो बादलों को ऊंचाई के अनुसार स्थापित करता है। यह बताता है कि अलग-अलग प्रकार के बादल वायुमंडल में अलग-अलग स्तर पर होते हैं।

जैन साहित्य ने भी मौसम विज्ञान के क्षेत्र में काफी योगदान दिया हैं । 'प्रजापना'और 'अवसीका कुर्निस'विभिन्न प्रकार की हवाओं के लिए उत्कृष्ट संदर्भ प्रदान करते हैं (त्रिपाठी, 1969)। अवसीका कर्निस पंद्रह हवाओं की एक सूची प्रस्तुत करती है (9-7 / 913) जैसे: 1- प्राचीनवात (easterly) 2- उदीचीन (northerly) 3- दक्षिणवात (southerly) 4- उत्तर पौरस्त्य (northerly blowing from the front) 5- सवात्सुक (undefined) 6- दक्षिण पूर्व तुगर (southerly strong wind) 7- अपरदक्षिणबीजा, (blowing from the south-west) 8- अपरबीजाय (westerlies) 9- अपरोत्तगर्जन (north-westerly hurricane) 10- उत्तरसवात्सुक (unknown) 11- दिक्षण सवात्सुक 12- पूर्वतुंगर 13- दक्षिण और पश्चिम बीजाय 14- पश्चिमगर्जभ (western storm) 15- उत्तरीगर्जभ (northern strom) । इसी संदर्भ में बाद में बवंडर को कालिकावत के रूप में संदर्भित किया गया है- इस शब्दावली ने अरब भूगोलवेत्ताओं और नौसैनिकों को प्रभावित किया था और उन्होंने इनमें से कई भारतीय तकनीकी शब्दों को अपनी भाषा (मोतीचंद्र, 'सर्थवाह (हिंदी), पेज 202) में आसानी से समाहित कर लिया था।

'प्रजापना' में भी बर्फ़बारी (हिम) और ओलावृष्टि (करक) का भी संदर्भ है (I.16)। नेमीचंद्र के 'त्रिलोकसार' (अंश 679, पेज.280) में कहा गया है कि सात प्रकार के कालमेघ (आवधिक बादल) हैं। बरसात के मौसम में उनमे से प्रत्येक सात दिनों के लिए वर्षा करते हैं। फिर सफेद बादलों की बारह प्रजातियाँ हैं जिन्हें द्रोण कहा गया है । वे भी सात दिनों के लिए वर्षा करते हैं । इस प्रकार वर्षा ऋतू कुल मिलकर 133 दिनों की होती है ।

बौद्ध साहित्य भी मौसम विज्ञान पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। पहले जातक के आख्यान में, जिसका नाम 'अपन्नाका' है, कई जलवायु तथ्यों का वर्णन किया गया है। 'मिगालोपाजातक' (कोवेल, अंग्रेजी अनुवाद भाग III, पेज .164) में, दो प्रचंड तूफानों का उल्लेख कालवात (काली हवा) और बेरम्बरात (त्रिपाठी, 1969) के रूप में किया गया है । पहले वाले को ऊपरी हवा (संयुक्ता निकाया, अंग्रेजी अनुवाद XVII। 1-9, पेज .157) से संबंधित कहा जाता है। सुमेरु पर्वत पर अक्सर हिंसक तूफान आया करते थे (उत्पाटनवात या हरणवात) (महामोर्जाटक

संख्या 491, पेज .333; हरित जातक संख्या 431, पेज.497)। यह प्रवृत्ति में बवंडर जैसा दिखता है। 'मिलिंडा पन्हो 'में गर्म हवा या लू को वातातप कहा गया है (अंग्रेजी अनुवाद भाग II, IV, 6.35, पेज 86)। 'आर्यसुर' में चार प्रकार की हवाओं के के नाम हैं; नियतानिल (मानसून), चण्डानिल (टेम्पेस्ट), उत्पातवात(तूफान) और पश्चात्यवात (पश्चिम की ओर) (जातकमाला, एच. केर्न द्वारा सम्पादित 10.29, पेज 90, 127, 133)। 'विनय पिताका'(III, भाग .9.4, P.85) में, बवंडर को वातमनमंडलीका - कहा गया है । 'दिव्यवदना' तूफान के कुछ प्रकार को कालिकावात (भाग II, P.41), और वर्षा के साथ-साथ तूफान को वातवर्षम (भाग.II, P.163) कहा गया है । 'मिलिंदपन्हो '(IV.1.36) का कहना है कि चार प्रकार की वर्षा होती हैं : 1. बरसात के मौसम की, 2. सर्दी के मौसम की, 3. दो महीने आषाढ और श्रावण की (जुलाई और अगस्त), और 4. मानसून के बिना वर्षा। एक नज़र में, यह देखा जा सकता है कि वर्गीकरण पूरी तरह से वैज्ञानिक है।

बौद्ध साहित्य बादलों के दो सामान्य वर्गों को संदर्भित करता है जैसे: कालमेघ (मानसून बादल) और अकालमेघ (तूफानी बादल या संयोगवश वाले) (महावस्तु भाग.II, पेज.34, त्रिपाठी, 1969)। संयुक्ता निकाया ने बादलों को पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत किया है (भाग .III, पुस्तक XI, 32.1.1, P.200), 1- शीतवलाहक (शांत बादल), 2 - उष्णवलाहक (गर्म बादल) 3- अभ्र वलाहक (गरजने वाले बादल, इसे क्यूम्यलस के साथ पहचाना जा सकता है) , 4- वातवलाहक (हवा के बादल - शायद वायुमंडल में संवहन धारा की गतिविधि के कारण बनने वाले बादल) और 5- वर्ष वलाहक (वर्षा के बादल - संभवतः क्यूम्यलोनिम्बस जो सबसे प्रचुर मात्रा में वर्षा लाता है)।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि जैन और बौद्ध ग्रंथों (400 ई.पू. से पहले) में बादलों और हवाओं का बहुत ही वैज्ञानिक वर्गीकरण है, जिनकी तुलना आधुनिक मौसम विज्ञान से की जा सकती है। इतने प्रारंभिक काल में सूक्ष्म निरीक्षण प्राचीन काल की एक स्वर्णिम उपलब्धि है।

वर्षा में विविधता

मत्स्य पुराण के अनुसार, बर्फ से आच्छादित पहाड़ों (हिमवत) के उत्तर और दक्षिण में पुण्ड्र बादल होते हैं जो वर्षा के भंडार को बढ़ाते हैं । वहाँ होने वाली सारी वर्षा बर्फ में परिवर्तित हो जाती है । हिमवत पर हवा अपने स्वयं के बल द्वारा उन बर्फ के गुच्छे को खींचती है और उन्हें महान पहाड़ों पर डालती है । हिमवत से परे कम वर्षा होती है (मत्स्य, I, 54.22-25)।

शकीरान सम्प्रभुज्वन्ति नीहार इति स मृतः।
दक्षिणेन गिरिर्योसौ हेमकूट इति स्मृतः।। मत्स्य **,I,54.22** ।।

उदगहिमवतः शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे।

पुण्डं नाम समाख्यात सम्वगवृष्टि विवृद्वये।। मत्स्य,I,54.23 ।।

तस्मिन प्रवर्तते वर्ष तन्तु षारसमुद्रभवम्।
ततो हिमवतो वायुर्हिमं तत्र समुद्रभवम्।। मत्स्य,I,54.24 ।।

आनयत्यात्मवेगेन सिज्वियानो महागिरिम्।
हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम्।। मत्स्य,I,54.25 ।।

इस प्रकार, तिब्बती पठार की अल्प वर्षा या शुष्क स्थिति का एक बहुत महत्वपूर्ण भौगोलिक तथ्य संदर्भित है। प्राचीन काल में भारतीयों द्वारा इस तथ्य का अध्ययन और ज्ञान वास्तव में उन प्राचीन भारतीयों की प्रशंसायोग्य है। लिंग पुराण (खंड ।, 36.38.39 और 49) कहते हैं, "यह पवन या वायु प्रवाह है जो धुएं और तापीय गतिविधि द्वारा जल से भरे हुए बादलों को बनाता है, ताकि पुस्कर और पक्षज बादल प्रचुर वर्षा दें सकें ”।

दन्दह्ययमानेषु चराचरेषु गोधूमभूतास्त्वथ निष्क्रमान्ति।
या या ऊर्ध्व मारुतेनेरिता वै तास्तास्त्वभ्रांयाग्निनावायुना च।।लिंग**,**I,36.38।।

अतो धूमाग्निवातांनां संयोगस्त्वमुच्यते।
वारीणि वर्षतीत्यभ्रमभ्रस्येशः सहस्त्रदृक्।। लिंग**,**I,36.39 ।।

विरिचोच्छ वासताः सर्वे प्रवहस्कंधजास्तः।
पक्षजाः पुष्कराघश्च वर्षाति च यदा जलम्।। लिंग**,I,36.49** ।।

आधुनिक मौसम विज्ञान हमें बताता है कि ध्रुवीय हवाएं वास्तव में उनके प्रभाव के वाले क्षेत्र फ़्लैंकिंग पोल या टुंड्रा में वर्ष में कभी भी वर्षा नहीं लाती हैं तथा केवल गर्मियों में उन स्थानों पर चलने वाली शक्तिशाली पश्चिमी हवाओं के कारण कुछ वर्षा होती है। पुराणिक पंक्ति में भी यही तथ्य बताया गया है,

ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्विष्टिं संहरते पुनः।। मत्स्य**,**Vol.I,54.36 ।।

अर्थ: ध्रुव से हवा वर्षा को दूर भगाती है,

वराहमिहिर द्वारा लिखित वृहत् संहिता और मयूरासित्रका दो बहुत महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं जो जलवायु और मौसम संबंधी जानकारी से भरे हुए हैं। हालांकि वे ज्योतिषीय अनुमानो से भरे हैं, उनमे पर्याप्त वैज्ञानिक तथ्य भी हैं। वृहत् संहिता में जलवायु विज्ञान और मौसम विज्ञान पर

तीन अध्याय (21 वें, 22 वें और 23 वें) हैं और वे उनकी अपनी प्राचीन पारंपरिक शैली में विषय का वर्णन करते हैं । यहां केवल अध्यायों की मुख्य विशेषताएं प्रस्तुत की गयी हैं ।

वृहत संहिता के अध्याय 21 के श्लोक 23 एवं 24 वर्णन करते हैं कि बिल्कुल सफेद अथवा घने बादल जलीय जीवों जैसे विशाल मछली शार्क अथवा कछुओं के अनुकूल होते हैं। तथा प्रचुर वर्षा के स्रोत होते हैं।

मुक्तारजतनिकाशास्तमालनीलोत्पलज्जनाभासः।
जलचरसत्वाकारा गर्भेषु घनाः प्रभूतजलाः।। वृ.सं.21.23 ।।

तीव्रदिवाकरकिरणाभितापिता मन्दमारुता जलदाः।
रुषिता इव धाराभिर्विसृजन्त्यम्भः प्रसवकाले।। वृ.सं.21.24 ।।

श्लोक 31 उन स्थितियों या मौसम संबंधी अवयवों पर चर्चा करता है जो स्थानिक वर्षा के विस्तार को निर्धारित करते हैं, हालांकि आधुनिक मौसम संबंधी दृष्टिकोण में इसका कम महत्व प्रतीत होता है ।

पज्चनिमिन्तैः शतयोजनं तदर्द्वार्द्वमेकहान्यातः।
वर्षति पज्जनिमित्ताद्रूपेणैकेन यो गर्भः।। वृ.सं.21.31 ।।

अध्याय 22 से, यह ज्ञात होता है कि बेतरतीब और घने बादल प्रचुर मात्रा में वर्षा देते हैं जो कृषि के लिए बहुत है जीवनदायी होती है । इसी प्रकार, यदि पूर्व, दक्षिण और उत्तर में स्थित बादल क्रमशः दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की ओर बढ़ते हैं, तो वे ठीक और प्रचुर वर्षा का कारण बनते हैं।

रविचन्द्रपरीवेषाः स्निग्धा नात्यन्तदूषिताः।
वृष्टिष्तदापि विज्ञेया सर्वसस्यार्थसाधिका।। वृ.सं.22.7 ।।

मेघाः स्निग्धाः संहताश्च प्रदाक्षिणगतिक्रियाः।
तदा स्यान्महती वृष्टिः सर्वसस्याभिवृद्वये।। वृ.सं.22.8 ।।

मयूराचित्रिका में, यह कहा गया है कि बिजली से रहित बिखरे हुए बादल लोगों के लिए हानिकारक होते हैं और जो लाल और रेशमी सफेद या सुनहरे या क्रुन्का पक्षी के रंग के होते हैं, जो वातावरण में सन्निहित होते हैं और बनावट में ऊन के समान होते हैं वो लोगों के लिए

हमेशा फायदेमंद होते हैं। पौष (दिसंबर-जनवरी) में कोहरे या धुंध की वजह से अच्छी वर्षा होती है। (सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, पुस्तकालय, पांडुलिपि संख्या 34332, पृष्ठ 36-37)।

पौषस्य कृष्णसप्तम्यां नभो विमलतारकम्।
स्वात्यां तुषारपातःस्यात श्रावणे तत्र वर्षणम्।।

वर्षा का निर्धारण करने वाली स्थितियों पर चर्चा करते हुए, कहा गया है कि अगर माघ (जनवरी-फरवरी) में कोई पाला नहीं पड़ता है, फाल्गुन में कोई तेज़ हवा (फरवरी - मार्च) नहीं , चैत्र (मार्च-अप्रैल) में कोई बादल नहीं, वैशाख (अप्रैल-मई) में कोई ओला-वृष्टि नहीं, ज्येष्ठ (मई-जून) में चिलचिलाती गर्मी नहीं, तो वर्षा के मौसम में अपर्याप्त वर्षा होती है (ऊपर पांडुलिपि, पृष्ठ 17 -18), अर्थात-

माघे हिमं न पतति वाता वान्ति न च फाल्गुने।
न च धूमायितं चैत्रे घनैर्नभस्ततं न तु।।

कारका मोच न वैशाखे शुक्रे चण्डातपो न हि।
तदातितुच्छा वृष्टिः स्यात् प्रावृष्टकाले न संशयः।।

यदि सुबह में सूर्य गर्म होता है, दिन के दौरान उसकी रोशनी पीले वर्ण की होती है और बादल ऊन जैसे और काले रंग के होते हैं, तो इसके परिणाम से अच्छी वर्षा होती हैं। इसी प्रकार, यदि सूर्य सुबह या उठने के समय गर्म होता है दोपहर के समय झुलसाने वाला होता है और बादलों का रंग पिघले हुए सोने जैसा होता है, तो वर्षा उसी दिन के दौरान होती है (उपरोक्त पांडुलिपि, पृष्ठ 18)।

प्रावृटकाले यदा सूर्यो मध्यान्हे दुः सहो भवेत्।
तद्दिने वृष्टिदः प्रोक्तो भृशं स्वर्णसमप्रभः।।

यदि पानी धुंधला दिखाई दे , बादल पहाड़ के आकार के हों, आवास साफ हों, आकाश का का रंग कौए के अंडे जैसा हो, वातावरण शांत हो और जलीय जानवर उच्च स्थान पसंद करते हों और अन्य तल में गायब हो जाएँ और जल चर तेज आवाज करते हों, तो बहुत अच्छी और प्रचुर वर्षा जल्द होती है (पांडुलिपि संख्या 34332, पृष्ठ 18)। इसके अलावा, अगर बादलों की बनावट तीतर के पंखों जैसी दिखती है तो वर्षा होती है।

यदा जलं च विरस गोनेत्र सन्निभिः।
दिशश्च विमलाः सर्वाः काकाण्डाभं यदा नभः।।

न यदा वाति तपनः पवनः स्थलं यदा।
शब्दं कुर्वन्ति मण्डूकास्तदा स्याद् वृष्टिकत्तमा।।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि मयूराचित्रिका ने वर्षा भिन्नता के पूर्वानुमान के लिए प्राकृतिक घटनाओं के अवलोकन और वर्णनात्मकता और दोनों के रिश्तों के सह के सम्बन्धों के माध्यम से सिद्धांतों को बनाने का प्रयास किया है। प्रकृति के दायरे के लक्षणात्मक वर्णन प्राय गणितीय सटीकता वाले कानूनों द्वारा नियंत्रित किया जाते हैं जिसमें चेतन का अंतर्ज्ञान (पक्षियों औरजानवरों) और घटनाओं के वैज्ञानिक कारण और प्रभाव संबंध सटीक आधार बनाते हैं, बशर्ते अवलोकन बहुत सावधानी से किया गया है। उन प्राचीन दिनों में, जब उन्नत मौसम विज्ञान और इसके जटिल संगणना, कंप्यूटर और अन्य साइबरनेटिक्स और सर्वो-मैकेनिक का ज्ञान नहीं था तब अज्ञात थे, यह विशेष महत्व का था और शायद एकमात्र तरीका था।

वर्षा का मापन

वर्षा के रूप में वर्षा की मात्रा आमतौर पर वर्षामापक में एकत्रित पानी के संचय से निर्धारित होती है; और कई प्रकार के मापक यंत्र नियमित रूप से इस काम के लिए लगाए जाते हैं। यह स्थापित करने के लिए पुख्ता सबूत हैं कि वर्षा मापने की प्रणाली मगध देश (दक्षिण बिहार) में मौर्य शासकों द्वारा चौथी या तीसरी शताब्दी ई.पू. में प्रारंभ की गयी और उन्हें पहली वेधशाला की स्थापना का श्रेय जाता है। छठी शताब्दी के अंत तक के शासकों द्वारा इस प्रणाली का प्रभावी ढंग से अभ्यास जारी रखा गया (श्रीनिवासन इत्यादि, 1975)।

मौर्य काल के दौरान, वर्षा मापक को वर्षामान के रूप में जाना जाता था- कौटिल्य ने इसके निर्माण का वर्णन इन शब्दों में किया है, "भंडार के सामने, एक कटोरा (कुंडा) जिसका मुंह एक अर्तिनी (२४ अंगुल = लगभग 18 इंच) चौड़ा वर्षा मापक (वर्षामान) के रूप में स्थापित किया जाएगा (अर्थशास्त्र , किताब, ॥ अध्याय V, पेज .56 शामाशास्त्री)। आधुनिक वर्षा मापक का एक योजना चित्र 3.2 में दिखाया गया है। प्राचीन भारतीय और साइमन के वर्षा मापक के आयामों की तुलना करके, उस अवधि के दौरान ज्ञान के स्तर के बारे में आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है।

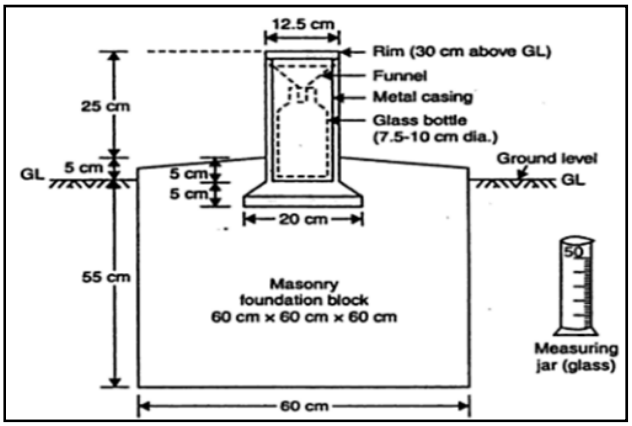

चित्र 3.2: साइमन वर्षा मापक (आधुनिक वर्षामापक) (स्रोत: रघुनाथ, 2006)

विभिन्न क्षेत्रों में वर्षा का वितरण उस समय अच्छी तरह से ज्ञात था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से एक संदर्भ का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है: " जन्गिल्ला देश (रेगिस्तान के देश या जंगलों से भरे देश) में होने वाली वर्षा की 16 ड्रोन हैं; अनुपनम (नम देश) की तुलना में आधे से अधिक; वे देश जो कृषि के लिए उपयुक्त हैं (देशवापनम); अस्माकस (महाराष्ट्र) के देशों में 13.5 ड्रोन; अवंती में (शायद मालवा) 23 ड्रोन; तथा अपरान्तनम (पश्चिमी देश, कोंकण के देश); में विशाल मात्रा में हिमालय की सीमाओं और उन देशों में जहां जल- प्रणाली कृषि हेतु उपयोग की जाती है कौटिल्य के वार्षिक औसत मात्रा के संबंध में वर्षा क्षेत्रों के वर्गीकरण की विधि वास्तव में उल्लेखनीय है और वह एकमात्र शास्त्रीय लेखक हैं जिन्होंने संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप के लिये इस विषय के पहलुओं को संक्षेप में बताया है (श्रीनिवासन, 1975)। इससे, यह स्पष्ट है कि कौटिल्य द्वारा दी गई वर्षा की माप की पद्धति वैसी ही है जैसी आज हमारे पास है, एकमात्र अंतर यह है कि वह इसे कुल भार में व्यक्त करता है (अर्थशास्त्र, किताब, ॥ अध्याय XXIV, पेज 130) जबकि हम आजकल रैखिक माप का उपयोग करते हैं। वर्षा के भौगोलिक विवरणों पर चर्चा करते हुए, वह प्रेक्षित करता है कि "जब वर्षा की अपेक्षित मात्रा का एक-तिहाई, वर्षा ऋतु के प्रारंभ और समापन के महीनों के दौरान और दो तिहाई बीच में हो, तब वर्षा को बहुत अधिक समान रूप माना जाता है (सषमारूपम) ।

जैसा कि कृषि आवश्यकताओं के लिए उम्मीद की जा सकती है, वर्षा का पूर्वानुमान लगाने का विज्ञान अस्तित्व में था और अनुभवजन्य रूप से विकसित हो रहा होगा। आगे इसका उल्लेख करते हुए अर्थशास्त्र पुस्तक में कहा गया है कि इस तरह की वर्षा का पूर्वानुमान बृहस्पति की स्थिति, गति और गर्भ (गर्भदान), शुक्र के उदय, अस्त और गति, और सूर्य के प्राकृतिक या अप्राकृतिक पहलुओं की स्थिति को देखते हुए लगाया जा सकता है । शुक्र की चाल से, वर्षा का अनुमान लगाया जा सकता है ।

बादलों के वर्गीकरण और वर्षा और कृषि के परस्पर संबंध पर चर्चा करते हुए आगे यह कहा गया कि “कुछ बादल सात दिन तक लगातार वर्षा करते हैं ; और अस्सी वो हैं जो छोटी बूंदें डालते हैं ; और साठ वे हैं जो सूर्य चमक के साथ दिखाई देते हैं ”। जब हवा से मुक्त और सूर्यकी रोशनी के साथ अमिश्रित वर्षा होती है इससे तीन बार जुताई संभव हो , फिर अच्छी फसल काटना निश्चित है।

अष्टाध्यायी के लेखक, पाणिनी (700 ई.पू.) ने वर्षा के मौसम को प्रावृष (IV, 3.26; VI 3.14) और वर्षा के रूप में संदर्भित किया है । पूर्व वाला ऋतु का पहला भाग था। इन दो भागों को

पूर्व वर्षा और अपर वर्षा (अवयवादक्रृत: VII 3.11) के रूप में जाना जाता था। उन्होंने वर्षप्रमाण (III, 4.32) को भी इस प्रकार संदर्भित किया है:

वर्ष प्रमाण अलोपश्चास्यान्यतरस्याम्।। अष्टाध्यायी,III,4.32 ।।

वर्षा के मापन के लिए उदाहरणों का हवाला देते हुए पाणिनि आगे लिखते हैं गोष्पदपरं वृष्टो देव: (गाय के खुर से बने गड्ढे के बराबर वर्षा), सीता परं वृष्टो देव: नहीं (स्वदेशी हल के जोतने से बनी लीक को भरने के बराबर वर्षा)। यह स्पष्ट है कि गोष्पद सबसे कम वर्षा का मापक था।

कौटिल्य की तरह, कणाद और वराहमिहिर जैसे अन्य पूर्ववर्ती ग्रन्थ ने भी वर्षा मापक के पिता के उपकरण का वर्णन किया है और हमें बताया कि इससे वर्षा कैसे मापी जाए। अध्याय 23 के श्लोक 2 में, उन्होंने कहा है कि एक क्यूबिट मापने के लिए एक गोलाकार कटोरी का निर्माण (कुण्डकम) कर वर्षा की मात्रा को बताना चाहिए, यथा.

हस्तविशालं कुण्डकमाधिकत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः।
पज्चाशत्पलमाढ़कमनेन मिनुयाज्जलं पतितम्। वृ.सं.23.2 ।।

उन्होंने वर्षा की गणना के लिए वह पाला, द्रोण और आढ़क (4 आढ़क = 1 द्रोण = 200 पल और 1 आढ़क = लगभग 7पाउंड) के वजन के उपायों को अपनाया । माप के लिए, वर्षा के वास्तविक समय के दौरान कटोरे में प्राप्त पानी को मापा जाना चाहिए। समय के अनुसार वर्षा के वितरण पर चर्चा 6,7,8 और 9 श्लोको में की गई है। वृहद संहिता के ये श्लोक विभिन्न चंद्र कलाओं में वर्षा की मात्रा को निर्दिष्ट करते हैं:

हस्ताप्यसौम्यचित्रापोष्णधनिष्ठासु षोडश द्रोणाः।
शतभिषगैन्द्रस्वातिषु चत्वारः कत्तकासु दशः।। वृ.सं.23.6 ।।

श्रवणे मघानुराधाभरणीभूलेषु दश चतुर्युक्ताः।
फज्गुन्या पज्चकृतिः पुनर्वसो विशंतिद्रोणाः।। वृ.सं.23.7 ।।

ऐन्द्राग्न्याख्ये वैश्वे च विशंति सार्पभे दश त्र्यधिका।
आहिर्बुध्न्यार्यम्णप्राजापत्येषु पज्चकृतिः। वृ.सं.23.8 ।।

पज्चदशाजे पुष्ये च कीर्तिता वाजिभे दश द्वौ च।
रौद्रेष्टादश कथिता द्रोणा निरूपद्रावेष्वेते।। वृ.सं.23.9 ।।

अध्याय XXXV में, उनका कहना है कि इंद्रधनुष की घटना वायुमंडल में बादलों के माध्यम से सूर्य की किरणों के वर्णक्रम विश्लेषण का परिणाम हैं (XXXV.1)।

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघाट्टिताः कराः साभ्रे।
वियति धनुः संस्थाना ये दश्यन्ते तदिन्द्रधनुः।। वृ.सं.35.2 ।।

पराशर प्राचीन वर्षामापक की युक्ति और वर्षा की मात्रा को मापने की विधि के बारे में जानते थे (वृहत् संहिता, अध्याय 21, गर्भलख्सनाध्याय) । अर्थात,

आढ़काज्श्चतुरो द्रोणानयां विघात् प्रमाणतः।
धनुः प्रमाणं मेदिन्यां विघाद द्रोणाभिवर्षणम्।।

चतुर्विशाड्. गुलानाहे द्विचतुष्काड. गुलोच्हिते।
भाण्डे वर्षाम्बुसंर्पूर्णे, ज्ञेयमाढकवर्षणम्।। वृ.सं. 21.32 से 21.33 तक।।

उपसंहार:

इस अध्याय में प्रस्तुत विभिन्न चर्चाओं से हमें पता चलता है कि मेघ निर्माण, वर्षा और इसके माप से संबंधित ज्ञान प्राचीन भारत में उच्च कोटि का था। वाष्पित जल का संघनन जो धूल कणों आदि की उपस्थिति से सुगम होता है (जो आधुनिक मौसम विज्ञान के अनुसार नाभिक के रूप में कार्य करता है), वर्षा के होने में यज्ञ, जंगलों, जलाशयों आदि के प्रभाव और बादलों का वर्गीकरण उनके रंग, वर्षा क्षमता आदि के साथ प्राचीन भारतीय साहित्य जैसे कि वेद, पुराण, वैश्यिका सूत्र, अष्टाध्यायी, और अर्थशास्त्र आदि में अच्छी तरह से वर्णित किया गया है। प्राकृतिक घटनाओं जैसे कि आकाश के रंग, बादल, बिजली, इंद्रधनुष आदि के आधार पर वर्षा का पूर्वानुमान उल्लेखनीय था। वर्षा मापने के लिए यंत्र विकसित किये गए थे और उनके सिद्धांत आधुनिक जल विज्ञान के समान थे सिवाय इसके कि मापन के लिए द्रोण, पल आदि के वजन को आधुनिक रैखिक माप के बजाय इस्तेमाल किया गया था।

सिंधु सभ्यता वर्षा में मौसमी विविधताओं और सिंधु बाढ़ को रोकने के तरीकों को खोजने में सक्षम थी। मौर्य काल के दौरान, भारत के विभिन्न क्षेत्रों में वर्षा के वितरण का वर्णन करना संभव था और उन्हें दुनिया भर में पहली वेधशाला की स्थापना का श्रेय दिया जाता है। आधुनिक मौसम संबंधी तथ्यों जैसे तिब्बती शुष्क क्षेत्र में वर्षा छाया और ध्रुवीय हवाओं के कारण वर्षा न होने की, पुराणों में पूरी तरह से वकालत की गई है। जैन और बौद्ध कृतियों ने बादलों की वास्तविक ऊंचाई का अनुमान लगाया। मानसूनी हवाओं का ज्ञान और उनके प्रभाव की प्राचीन भारतीयों द्वारा कल्पना आधुनिक जल विज्ञान के अनुसार हैं। ये तथ्य बताते हैं कि भारत में प्राचीन काल में मौसम विज्ञान सहित जल विज्ञान और संबद्ध प्रक्रियाओं का समृद्ध ज्ञान था, जो आधुनिक जल विज्ञान के बराबर है।

अध्याय-4

अपरोधन, अंतःस्यंदन और वाष्पोत्सर्जन

जलविज्ञानीय चक्र में, वर्षा के रूप में गिरने वाला पानी, समावेशित जल, (अंत: स्पंदित जल) सतही अपवाह और भूमिगत जल भंडारण के रूप में फिर से प्रकट होता है । इसे आधुनिक जल विज्ञान साहित्य में वर्षा विभाजन भी कहा जाता है। सतही और भूजल जलाशय लगातार पुनर्भरण (वर्षा) द्वारा पुनः भर रहे हैं और वाष्पीकरण द्वारा खाली हो रहे हैं । वर्षा के घटकों के विभाजन से संबंधित विभिन्न अवधारणाओं की प्राचीन भारतीयों द्वारा अच्छी तरह से कल्पना की गई थी। इस अध्याय में इस क्षेत्र में वेदों और अन्य प्राचीन भारतीय साहित्य में उपलब्ध प्राचीन ज्ञान के बारे में संक्षेप में चर्चा की गयी है।

अपरोधन और अंतःस्यंदन

अपरोधन वर्षा का वह हिस्सा है जो पृथ्वी की सतह के द्वारा ग्रहण किया जाता है और जो तत्पश्चात् वाष्पित हो जाता है। अपरोधन वर्षा की मात्रा का 15-50% हो सकता है, जो कि पानी के बजट का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है । कई प्रकार के अपरोधन हो सकते हैं, जो एक दूसरे के साथ परस्पर क्रिया भी कर सकते हैं (गेरिट्स, 2010)। अंतःस्पदंन शब्द उस प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए का उपयोग किया जाता है जिसमे पानी मिट्टी द्वारा सोखा या अवशोषित किया जाता है (हॉर्टन, 1933) और यह जलविज्ञानीय चक्र के महत्वपूर्ण घटको में से एक है। जलविज्ञानीय चक्र में जल महासागरों और भूमि पर विभिन्न सतही जल पिंडों से वाष्पीकृत होकर वायुमंडल का हिस्सा बन जाता है। वाष्पित नमी ऊपर उठती है और वायुमंडल में तब तक फैलाती है जब तक कि यह भूमि पर या सागर में बरस नहीं जाती। वर्षा के पानी का अपरोधन हो सकता है और पौधों द्वारा वाष्पोत्सर्जन में उपयोग किया जा सकता है या यह जमीन पर बह भी सकता है।

अपरोधन के कुछ संदर्भ प्राचीन भारतीय साहित्य में अन्य विषयों यथा कि वर्षा, मेघ निर्माण और पर्यावरण शुद्धिकरण पर वनों और वनस्पतियों के प्रभाव की व्याख्या के साथ अन्तमिश्रित पाए जाते हैं। तैत्रीय/(तैत्तरीय) संहिता में वर्षा के होने पर वनों के प्रभाव का उल्लेख किया गया है (टीएस II, 4.9.3)

> सौभययैवाहुत्या दिवो वृष्टिमव रुन्धे मघुषा सं यौत्यपां
> वा एष ओषधीनां रसो यन्मध्वभदय एवौषधीभयो वर्षत्यथो
> अद्भय एवौषधीभयो वृष्टिं नि नयति।। ताई.अरा.,II,4.9.3 ।।

महाभारत के श्लोक 184.15-17 में कहा गया है कि पौधे अपनी जड़ों से पानी पीते हैं। पौधों द्वारा पानी के ऊपर उठने की प्रक्रिया को एक पाइप के माध्यम से पानी के चढ़ने के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। यह कहा जाता है कि हवा के संयुग्मन से जल उठने की प्रक्रिया सुगम हो जाती है। इसके द्वारा स्पष्ट रूप से मिट्टी में केशिका प्रक्रिया के द्वारा पानी के ऊपर उठने और नीचे गिरने के ज्ञान का पता चलता है:

पादैः सलिलपानाच्च् व्याधीनां वापि दर्शनात्।
व्याधिप्रतिक्रियत्वाच्च विघते रसनं द्रुमे।। **एम.बी.** .XII,184.15 ।।

वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोध्वं जलमाद्देत।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिवति पादपः। **एम.बी.** .XII,184.16 ।।

जहाँ तक अंतःस्पदंन की बात है, विद्वान, वराहमिहिर ने स्पष्ट रूप से वृहत संहिता के उद्घाटन श्लोक में इसका खुलासा किया है। प्रथम श्लोक में बताया गया है कि कुछ स्थानों पर जल स्तर उच्च है और अन्य स्थानों पर यह निम्न है:

पुंसां यथादेन शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः (वृ.सं.,54.1)

इसका तात्पर्य है कि पृथ्वी के नीचे पानी की प्रवृत्ति मानव शरीर में नसों की तरह हैं, कुछ उच्च और कुछ न्यून । श्लोक 2 इस तरह पढ़ा जाता है।

एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात्।
ननारसत्वं वहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव।। वृ.सं.,54.2 ।।

यह बताता है कि आकाश से गिरता पानी पृथ्वी की विभिन्न प्रकृति से कई रंग और अलग- अलग स्वाद को ग्रहण करता है। इस प्रकार, तात्पर्य यह है कि वर्षा जल का अंतःस्पदंन भूजल का स्रोत है। भूजल वर्षा जल का एक जटिल फलन है। वर्षा जल का मूल रूप से एक जैसा ही रंग होता है लेकिन पृथ्वी की सतह पर नीचे आने के बाद और अन्तःस्रवण के बाद विभिन्न रंगों और स्वादों को ग्रहण करता है।

1200 ईस्वी के युग में बापुदेश शास्त्री द्वारा लिखित तीन छंदों (भास्कराचार्य द्वारा लिखित सिद्धांत सिरोमणि में, भाग-2, गोलाध्याय, त्रिपाठी, 1969) में कोहरे या धुंध की घटना के लिए वैज्ञानिक विवरण प्रदान किए गए हैं कोहरे हेतु "रजः सहित" शब्द का प्रयोग किया गया है । छंद में शुद्ध रूप में कहा गया है कि बरसात के अंत में विघटित बादल (नमी) पृथ्वी की सतह

और पर्वत, पेड़, वनस्पति आच्छादन या उद्यान के पास लटके रहते हैं और हवा और गर्मी की गतिविधि के माध्यम से इन सतहों से गायब हो जाते हैं। इससे स्पष्ट रूप से जमीनी सामग्री, वनस्पति आदि द्वारा अपरोधन और हवा और गर्मी की गतिविधि द्वारा समय के साथ इसके गायब होने के तथ्य का पता चलता है।

वाष्पोत्सर्जन

वाष्पीकरण और वाष्पन-उत्सर्जन और अन्य जलविज्ञानीय प्रक्रियाओं के साथ इन घटनाओं का अंतर्संबंध वैदिक और अन्य प्राचीन भारतीयों द्वारा अच्छी तरह से समझा गया था जैसा कि प्राचीन साहित्य से साबित होता है। ऋग्वेद (I, 6.10) में यह उल्लेख है कि सूर्य की किरण पृथ्वी और अन्य पदार्थों में निहित जल को छोटे छोटे कणों में तोड़ती है, फिर ये छोटे छोटे कण हवा में चढ़ते हैं और बादल का निर्माण करते हैं, यथा :

इतो वा सातिमीमर्हे दिवो वा पार्थिवादधि।
इन्द्र महोवार जसः।। आर.वी.I,6.10 ।।

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम्।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी।।आर.वी.I,105.12 ।।

ऋग्वेद के श्लोक I, 105.12 में कहा गया है कि समुद्र आदि से जल सूर्य की किरणों की गर्मी के कारण वाष्पित हो जाता है, जो वर्षा के बनने का प्राथमिक कारण है। ऋग्वेद के श्लोक IV, 58.1 में भी यही तथ्य सामने आया है:

समुद्रादूर्मिर्मधुमां उदारदुपांशुना समृमतत्वमानट्।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिव्हा देवनाममृतस्य नाभिः।।आर.वी.IV,58.1।।

ऋग्वेद के श्लोक आठवें, 72.4 में कहा गया है कि वायुमंडलीय हवा सूर्य के कारण गर्म हो जाती है, फिर यह गर्मी पृथ्वी तक पहुंचती है और आर्द्रता को वाष्प में परिवर्तित करती है और इसे बादलों के रूप में इकट्ठा करती है, जो वर्षा और खाद्य उत्पादन का कारण है यथा :

जाम्यतीतये धनुर्वयोधा अरुहद्वनम्।
ध्षर्दे जिह्वायवधात्।। आर.वी.VIII,72.4 ।।

ऋग्वेद की तरह, यजुर्वेद में वाष्पीकरण के साथ-साथ उत्सर्जन के बारे में कुछ ज्ञान भी शामिल है, यथा:

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयाधसं देवो देवमवर्धयत।। **वाई.वी.**,28.43 ।।

देवो देवैर्वनस्पति हिरण्ययर्णो मधुशाखः सुपिप्पलों देवमिन्द्रभवर्धयत्।। **वाई.वी.**,28.20।।

यह कहता है कि वनस्पति पृथ्वी से पानी को आकर्षित करती है एंव गर्मी, हवा इत्यादि द्वारा वायुमंडल में वाष्पित करती है जिससे बादलों का निर्माण होता है। इसी तरह, अथर्ववेद (IV, 25.2 और IV, 27.14) में कहा गया है कि सार्वभौमिक सूर्य और हवा के कारण, पानी आकाश में जाता है और वर्षा के रूप में वापस आता है। वाष्पोत्सर्जन सूर्य की किरणों और हवा के कारण होता है, यथा:

ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि याभयां रर्जो युपितयन्तरिक्षे।
ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ र्नो मुज्चतमंहसः।। **ए.वी.**IV.25.2 ।।

अपः समुद्राद दिवमुदवंहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति।
ये अभिदरीशानां मरुतश्चंरान्ति ते नो मुज्चन्तंहसः।। **ए.वी.**IV,27.74 ।।

ऋग्वेद के श्लोक 173.6 में कहा गया है कि वायुमंडल ने पृथ्वी को चारों तरफ से घेर रखा है।

प्र यदित्था महिना नृभयो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये नास्मै।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावां ओपशमिव घाम्।। **आर.वी.**I,173.6 ।।

सौर घटनाएं आकाश या स्वर्ग से जुड़ी हैं, जबकि बिजली, वर्षा और हवा को वायुमंडल में होने वाली घटनाओं के रूप में संदर्भित किया जाता है (आर.वी., IV, 53.5, III, 56, I., 108.9-10), लेकिन इन पदों से यह संदिग्ध लगता है कि ऋग्वेद को वायु-मंडल की वास्तविक सीमा या ऊर्ध्वाधर ऊंचाई का पता या अनुमान था?

यदिन्द्राग्नी परभस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातंमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य।। **आर.वी.**I,108.9-10 ।।

षड् भारों एको अचरन्विभर्त्यृतं पर्षिष्ठमुप गाव आगुः।
तिस्त्रो महीस्परास्तस्थुरत्यागुहा द्वे निहिते दर्श्येका।। **आर.वी.**III, 56.2 ।।

त्री षधस्था सिन्धवास्त्रिः कवीनामुत त्रिमाताविदयेषु सम्राट।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्त्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदये प्रत्यमानाः।। **आर.वी.**,III,56.5।।

त्रिख्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रंजासि परिभूस्त्रीणि रोचना।
तिस्त्रो दिवः पथिवीस्तिस्त्र इन्वति त्रिभिब्रतैरभि नो रक्षति त्मना।**आर.वी.**,IV,53.5 ।।

हमने पढ़ा है "सवित्र (सूर्य) परिमाण में आकाश के तीन खंडों तीन दुनिया, तीन शानदार मण्डल, तीन आकाश, तीन गुना पृथ्वी को घेरे है । इस संबंध में एक बहुत ही महत्वपूर्ण सवाल मन में आता है कि क्या आकाश के तीन विभाजन क्षोभ मंडल, समताप मंडल और आयनमंडल हैं? पुनः पृथ्वी के अति शीतल, समशीतोष्ण और ऊष्ण में तीन विभाजन फिर से हमें यह सोचने योग्य बनाते हैं कि क्या आर्य अति शीतल और समशीतोष्ण क्षेत्रों के बारे में जानते थे और यह संभव है कि उनकी समुद्री यात्रा और आवास के लिए अग्रिम अभियान के दौरान उन्हें अति शीतल क्षेत्र का पता चल हो।

वैदिक लोग अच्छी तरह से जानते थे कि पौधों (या वनों) का पानी की हानि और वर्षा के कारण पर कुछ प्रभाव हैं (टीएस।, ॥, 4.9.3)।

सौभययैवाहुत्या दिवो वृष्टमव रुन्धे मघुषा सं यौत्यापां वा एष ओषधीनां
रसो यन्मध्वभदय एवौषधीभयो वर्ष्सत्यथो उद्भय एवौषधीभयो वृष्टिं नि नयति।। **टीएस.**,II,4.9.3।।

सूर्यताप की अवधारणा और भूमिका को तैत्तरिया संहिता में भी संदर्भित किया गया है। अग्नि (सूर्यताप) वर्षा का कारण बनता है (तैत्तरीय संहिता, ॥, 4.10.2), यथा:

सप्तकपालसौर्यमेककपालमग्निर्वा इतो वृष्ट मुदीरयति मरुतः सृष्टां नयन्ति यदा खलु
वा असावादित्यो न्यड. रष्मिभिः प्यावर्ततेथ वर्षति धामछदिवि खलु वै भूत्वा
वर्षत्येता वै देवता वृष्टया ईशते ता एवं स्वेन भागधेयेनोप धावति ता।। **टीएस.**II,4.10.2 ।।

महाकाव्य रामायण, पृथ्वी से चंद्रमा की दूरी तक के वातावरण, इसकी स्थितियों और ब्रह्मांडीय क्षेत्रों के बारे में बहुत सारी जानकारी प्रस्तुत करता है। संपूर्ण वायुमंडलीय ब्रह्मांडीय फैलाव को नौ क्षेत्रों में विभाजित किया गया था, जहां अंतिम क्षेत्र सबसे लंबा है। रामायण (I.47.4) पौराणिक रूप से वायुमंडलीय क्षेत्रों की उत्पत्ति का वर्णन करती है।

वातस्कन्धा इमे सप्त चरंन्तु दिवि पुचक।
मारुता इति विख्याता दिव्यरुपा मामात्मजाः।। **राम**..I,47.4 ।।

गहन सूर्यताप और उच्च तापमान मौजूदा बादलों के विनाश या खंडन या विसर्जन के साधन के रूप में काम करता है इस प्रकार रामायण के श्लोक VI.43.29 में कहा गया है:

निर्विभेद शरैस्तीक्ष्णैः करैर्मेघमिवांशुमान्।। **राम**..VI,43-29 ।।

रामायण में, हम सामान्य श्लोक (II.105.20) में सूर्य की किरणों द्वारा वाष्पीकरण के बारे में, और समुद्र के सौर ताप के कारण बादलों के बनने के बारे में (VII, 32.68) पढ़ते हैं, यथा :

आयूर्षि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलिमवांशवः।। **राम**.,II,105.20 ।।
उद्भूत आतपापाये प्योदानामिवाम्बुधौ।। **राम**.,VII,32.68 ।।

रामायण के श्लोक VII.25.30 में भी समुद्र के पानी के सूर्य ताप से गर्म होने को संदर्भित किया गया है।

दौदात्म्येनात्मनोद्वतस्ताप्ताम्भा इव सागरः।
ततो ब्रवीद दशग्रीवः कुद्रः संरक्तलोचनः।। **राम**..VII,25.30 ।।

महाकाव्य महाभारत के बारहवें स्कंद में, वातावरण को सात क्षेत्रों (स्कंद, गोलार्द्ध) में विभाजित किया गया है, और उन पर काफी विस्तार से चर्चा की गयी है। आवह, नाम की हवा, (महाभारत XII 328.37), जोर से आवाज के साथ बहती है। एक और हवा जो चार सागर से पानी पीती है और इसे चूसकर यह आकाश में बादलों को और बाद में वर्षा के देवता वर्षा को वर्षा करने के लिए देती है उसे उद्वह कहा जाता है (महाभारत XII, 328.38-39), यथा:

अम्बरे स्नेहमभयेत्य विधुदा भयश्च महाधुतिः।
आवहो नाम संवाति द्वितीयः श्वसनो नदन।। **एम.बी.** .XII,328.37 ।।

उदयं ज्योतिषां शश्वत सोमादीनां करोति यः।
अन्तर्देहेषु चोदानां यं वदन्ति मनीषिणः।। **एम.बी.** .XII,328.38 ।।

यश्चतुर्म्य समुद्रेभयो वायुर्धारयते जलम्।
उद्धत्याददते चापो जीभूतेभयोम्बरे निलः।। **एम.बी.** .XII,328.39 ।।

हवा के अलावा, सूर्य को वाष्पोत्सर्जन के मुख्य कारण के रूप में माना गया है । वन पर्व हमें बताता है कि सूर्य सभी पौधों और जल निकायों से नमी को वाष्पित करता है जो वर्षा का

कारण बनती हैं (महाभारत ।।I.3.49)। महाकाव्य हमें विभिन्न प्रकार के बादलों और वायुमंडलीय परतों की सूचना भी देता है ।

त्वमादायांशुमिस्तेजो निदार्घो सर्वदेहिनाम।
सवौषाधिरसानां च पुनर्वर्षासु मुज्चसि।। **एम.बी.** .III.3.49 ।।

संदहत्यैकार्णवं सर्व त्वं शोषयसि रश्मिभिः।। **एम.बी.** .III.3.59 ।।

महर्षि कणाद ने अपने (वैशे. सूत्र., 5.2.5) में पानी के वाष्पीकरण का कारण इस प्रकार बताया है, "सूर्य की किरणें हवा के साथ संयोजन के माध्यम से पानी के ऊपर उठने का कारण बनती हैं":

नाइयो वायु संयोगादारोहणंम्।। **वै.सूत्र**5.2.5 ।।

महर्षि कणाद को वायुमंडल में संवहन धाराओं का भी ज्ञान था जिसे वे बहुत ही वैज्ञानिक शब्दों में संदर्भित करते हैं:

नोदनापीडनात्संयुक्त संयोगाच्च।। **वै.सूत्र**5.2.6 ।।

लेखक और टिप्पणीकार शंकर मिश्रा (1600 ईस्वी) ने इसे विस्तारपूर्वक समझाया है और इसे नीचे से गर्म पानी की केतली के उदाहरण के साथ चित्रित किया है (त्रिपाठी, 1969)। यह निर्णायक रूप से साबित करता है कि महान दार्शनिक कणाद को पता था कि सूर्य की किरणें वायुमंडल में उपस्थित विकिरण और संवहन धाराओं के माध्यम से पृथ्वी को गर्म करती हैं।

विभिन्न पुराण हमें बताते हैं कि वायुमंडल में सात क्षेत्र या परतें हैं (वात स्कंध) या सात प्रकार की हवाएँ हैं (वायु पुराण 49.163) हैं । नारद पुराण सात वायु मार्गो की बात करता है (60.13) अर्थात सप्तैतेवायुमार्गा: कूर्मा अध्याय. 41.6-7 में भी थोड़े बदलाव के साथ यही बात कही गयी है, जैसा यहाँ वर्णित है:

रसातलतलात्सप्त सप्तैवार्ध्वतलाः क्षितौ।
सप्त स्कन्धास्तथा वायोः सब्रह्मसदना द्विजाः।। **वायु**.49.163 ।।

आवहः प्रवहश्चैत ततैवानुवहः पुनः।
सम्बहो विवहश्चैव तदूद्र्ध्व स्यात्परावहः।। **कर्म**.41.6 ।।
तथा परिवहश्चैव वायोर्वे सप्त नेमयः।। **कर्म.** 41.7 ।।

वाष्पीकरण, बादल बनने और उनके वायु या वायुमंडल (वात स्कन्ध) को क्षेत्रों के साथ संबंध (वात स्कंध) कई पुराणों (ब्रह्माण्ड खंड ॥, अध्याय 9., वायु. अध्याय 51, लिंग, ।, 41, मत्स्य, ।, 54) में काफी संतोषजनक रूप से वर्णित किया गया है और इन विषयों पर उन्होंने एक पूर्ण-पृथक अध्याय समर्पित किया है, जो सकारात्मक रूप से यह बताता है कि मौसम विज्ञान की इस शाखा के महत्व को महसूस किया गया था। कुछ पदों को यहाँ उद्धृत किया गया है:

नावष्टया परिविश्मेत वारिणा दीप्यते रविः।
तस्मादयः पिबन्यो वै दीप्यते रविरंबरे।। **ब्रह्माण्ड**, Vol.II,9.138 ।।

तस्य ते रश्मयः सप्त पिबंत्यंभो महार्णवात।
तेनाहारेण संदीप्ताः सूर्याः सप्त भवंत्युत।। **ब्रह्माण्ड**,Vol.II,9.139 ।।

वर्षाघर्मो हिमं रात्रिः संध्या चैव दिनं तथा।
शुभाशुभं प्रजानां च ध्रुवात्सर्व प्रवर्तते।। **वायु.** 51.11 ।।

ध्रुवेणाधिकृतांश्चैव सूर्योपावृत्य तिष्ठतिः।
तदेषदीप्त किरणः स कालीग्निर्दिवाकरः।। **वायु.** 51.12 ।।

सूर्यः किरणजालेन वायुमुक्तेन सर्वशः।
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विज सत्तमाः।। **वायु.** 51.13 ।।

वायु पुराण की उपरोक्त पंक्तियों में बताया गया है कि सूर्य की किरणें हवा के साथ पृथ्वी से पानी निकालती हैं। लिंग पुराण (I, 41.11,21 और 30), विशेष रूप से पानी के वाष्पीकरण में सूर्य की किरणों की भूमिका को पहचानता है, जो बादलों और बाद में वर्षा में परिवर्तित हो जाता है।

प्रख्यात जैन ग्रंथ 'सूर्य प्रजनापति ' में सूर्यताप, विकिरण और सूर्य के प्रकाश के परावर्तन और ऊर्जा और पृथ्वी और विभिन्न सतहों के ताप पर ध्यान केन्द्रित किया है। "धवलता अलवाड़ी" की इसकी अवधारणा में इनका योगदान अद्भुत प्रतीत होता है, जब हम इस तथ्य को ध्यान में रखते हैं कि यह काम कम से कम लगभग आधा सहस्राब्दी ई.पू. में किया गया था । धवलता अलवाड़ी की अवधारणा आधुनिक जल-मौसम विज्ञान का एक महत्वपूर्ण पहलू है। वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया एल्बिडो से बहुत प्रभावित होती है।

वैछुतो जाठरः सौरावारिगर्भास्त्रयोनियः।। **लिंग.** I,41.11।।

याश्चासौ तपने सूर्यः पिवन्नभो गभस्थिभिः।
पार्थिवाग्निविभिश्रोसौ दित्यः शुचिरिति स्मृत।। **लिंग.** I,41.11 ।।

वसंते चैव ग्रीष्मे च शनैः स तपते त्रिभिः।
वर्षास्वथो शरदि च चतुर्भिस्यं प्रवर्षति।। **लिंग.** I,41.30 ।।

ध्रुवेणाधिष्टताश्चापः सूर्यो वै गुहय तिष्ठति।
सर्वभूतशरीरेषु त्वापो हयानुश्चताश्चियाः।। **मत्स्य.** I,54.29 ।।

तेजोभिः सर्वलोकेभय आदत्ते रश्मिभिर्जलम।। **मत्स्य.** I,54.31 ।।

समुद्राद्वायुसंयोगात वहन्त्यापो गभस्तयः।
ततस्त्वृतुवशात्कालेपरिवर्तन दिवाकरः।। **मत्स्य.** I, 54.321 ।।

प्रभर्ता 4, सूत्र 25 में, सूर्यताप या सूर्य की गर्मी(ताप क्षेत्र) (प्रभर्ता 5, सूत्र 26) (लेखा प्रतिहति के रूप में नामित, सूर्य के प्रकाश का परावर्तन) सूर्य के प्रकाश के फैलने, विकिरण, सूर्यताप, परावर्तन और अल्बेडो के प्रकीर्णन की घटनाओं का सटीक वैज्ञानिक विवरण दिया है। सबसे पहले, इसमें अन्य संप्रदायों के अनुयायियों (परतीरथिकानाम) द्वारा रखे गए सूर्य के प्रकाश के परावर्तन पर बीस सिद्धांतों का उल्लेख है- फिर, यह एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य को संदर्भित करता है कि अनदेखी (अदृश्य) वस्तुओं में भी परावर्तन क्षमता होती है।

प्रभर्ता 9 की सूक्ति 30 में संवहन की प्रकृति और पृथ्वी की सतह, जल निकायों और इसकी वस्तुओं और वातावरण और उसके महाद्वीपों के संदर्भ में सूर्य की किरण के माध्यम से तपने की चर्चा की गयी है। सूर्य प्रजनाति के लेखक का भी कहना है कि सूर्य की तिरछी किरण, ऊर्ध्वाधर किरण के मुकाबले कम गर्मी देती है। इसकी सूर्य उदय, दोपहर और शाम और विभिन्न स्थानों (या अक्षांश) के संदर्भ में चर्चा की जाती है। इससे पता चलता है कि जैन काल के दौरान, भारतीयों को ऊष्मा विनिमय प्रक्रियाओं के गहन तकनीकी सिद्धांतों के बारे में अच्छी तरह से पता था।

उपसंहार

अध्याय में प्रस्तुत विभिन्न संदर्भों और चर्चाओं से पता चलता है कि प्राचीन भारतीयों की अपरोधन, अंतःस्पदंन की प्रक्रियाओं के बारे में महत्वपूर्ण समझ विकसित थी। वनस्पति द्वारा अपरोधित जल एंव पृथ्वी की सतह के निकट असम पदार्थों पर जल की बूंदे भी देखी गई थी, जो कि वायु एंव ऊष्मा द्वारा अदृष्य हो जाती थी। जो कि हवा और गर्मी की गतिविधियों से गायब हो जाती हैं, का भी ज्ञान था । आधुनिक मृदा विज्ञान हमें बताता है कि मिट्टी परस्पर जुड़े छिद्र स्थानों से बनी है। इसका प्राचीन भारतीयों द्वारा स्पष्ट रूप से ज्ञान था और उन्होंने इसकी मानव शरीर में नसों के साथ तुलना की थी, जिसके माध्यम से अंतःस्पदंन होता है, जो भूजल का स्रोत है। प्राचीन भारतीयों का वाष्पीकरण और उत्सर्जन के बारे में भी बहुत वैज्ञानिक ज्ञान विकसित था । सूर्यकी किरणें, हवा, आर्द्रता, वनस्पति इत्यादि वाष्पोत्सर्जन के प्रमुख कारण हैं, यह उन्हें पता था। प्राचीन भारतीयों ने जलविज्ञानीय चक्र, ऊर्जा परिसंचरण और खाद्य उत्पादन और, प्राकृतिक पारिस्थितकी तंत्र को बनाए रखने के लिए वाष्पोत्सर्जन के महत्त्व को माना था । सौर घटना, प्रकाश, हवा, बादल का निर्माण आदि वायुमंडल की निचली परत में होते हैं। वायुमंडल को क्षोभ मंडल, समताप मंडल और आयनमंडल में और ग्लोब को समशीतोष्ण और नाज़ुक क्षेत्र में विभाजित किया गया था, जो आधुनिक मौसम विज्ञान के लिए तुलनीय है। पौधे जड़ों के माध्यम से पानी पीते हैं जो हवा के संयोजन द्वारा सुगम होता है जो महाभारत में वर्णित है महाभारत पूरी तरह से मिट्टी, पानी और पौधों के संबंध में केशिका की आधुनिक अवधारणा की पुष्टि करता है। यह तथ्य कि पौधों और वन आदि पानी की हानि पर कुछ प्रभाव रखते हैं, महाद्वीपों और जल निकायों की तापन दर में अंतर , संवहन धाराओं का गठन और उनके प्रभाव अच्छी तरह से ज्ञात थे। हालाँकि, यह प्राचीन जलविज्ञान साहित्य में आगे के शोध का विषय है कि अपरोधन, अंतःस्पदंन और वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रियाओं को निर्धारित करने के लिए विशिष्ट उपकरण / तकनीकें उस समय थीं या नहीं ?

अध्याय-5

भू-आकृति विज्ञान और सतही जल

नदियाँ न केवल मनुष्यों के लिए बल्कि जीवन के सभी रूपों के लिए अमूल्य हैं। नदियां लोगों के बसने के लिए उपयोगी जगह ही नहीं हैं अपितु लोग पीने के पानी की आपूर्ति और सिंचाई, बिजली का उत्पादन, माल का परिवहन और भोजन प्राप्त करने के लिए भी नदी के पानी का उपयोग करते हैं। नदियां सभी प्रकार के पौधों और जानवरों के लिए प्रमुख जलीय पारिस्थतिकी तंत्र हैं। यहां तक कि नदियां अपने नदीतल के माध्यम से पानी को नीचे की ओर निर्वहण करके भूमिगत जलभृत् को जल से भरे हुए रखने में मदद करती हैं।

बांधों जैसी जलीय संरचनाओं के निर्माण के लिए धारा प्रवाह के बारे में ज्ञान नितान्त आवश्यक है। सिंधु घाटी में पहली बड़ी मानव सभ्यताएं (3000-1500 ई.पू.); जिन्हें सिंधु सभ्यता या हड़प्पा सभ्यता कहा जाता है, उच्च स्तर की जलीय अभियांत्रिकी कौशल का प्रदर्शन करती हैं (पांडे, 2016)। हड़प्पा संस्कृति के अचानक समाप्त होने के बाद, वैदिक युग का प्रारंभ हुआ। वैदिक ज्ञान के अनुसार, इस ग्रह का सारा जीवन आप: (पानी) से विकसित हुआ है । लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व के बाद के साहित्यिक संदर्भ और पुरातात्विक आंकड़े तटबंधों, नहरों और अन्य जलीय कार्यों का विकास इंगित करते हैं। साहित्य बताता है कि मौर्य काल के दौरान भारत के सिंधु गंगा के मैदानों और देश के अन्य हिस्सों में सिंचाई और पीने के पानी के लिए बड़ी संख्या में जलीय संरचनाओं (बांध, नहर और झील) का निर्माण किया गया था (शॉ इत्यादि, 2007; सुटक्लिफ इत्यादि, 2011)। आश्चर्यजनक रूप से, इनमें से कई संरचनाएं बाढ़ सुरक्षा उपायों पर विचार करके उत्प्लव मार्गो से सुसज्जित थी । यह अध्याय संक्षेप में भू-आकृति विज्ञान और सतही जलविज्ञान के क्षेत्र में वेदों और अन्य प्राचीन साहित्य में उपलब्ध प्राचीन ज्ञान के बारे में चर्चा करता है।

ऋग्वेदिक भजन (X.बी2.1 और X.121.1) कहता है कि सृष्टि की उत्पत्ति जल और ब्रह्मांडीय स्वर्ण अण्डे (भ्रूण) (हिरण्यगर्भ) से हुई थी; जो पानी की उम्र, जफाइट्स के मूल, आदिकालीन मछलियों, सरीसृप, अकशेरुकी, कशेरुक और स्तनधारियों की उत्पत्ति के पृथ्वी के भूवैज्ञानिक और जैविक विकास के अनुरूप है।

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिददयावापथिवी अप्रथेताम्।।**आर.वी.**X,82.1 ।।

हिरण्यगर्भः समवर्ततााग्रे भूतस्य जातः पतिरर्के आसीत्।
स दाधार पृथिवी घामुतेमां कस्मे देवाय हविषा विधेम्।।आर.वी.X,121.1 ।।

ऋग्वेद के अनुसार, पृथ्वी पर प्रचुर मात्रा में ऊंचाइयां हैं, यह पहाड़ों का भार उठाती है और मैदान में जंगलों के पेड़ों का आश्रय (क्षमा) है। वह तेज वर्षा से सजीवता लाती है, और उसके बादलों की चमक से स्वर्ग की बौछारें छंट जाती हैं। पृथ्वी (मही) महान है, दृढ़ और चमकदार (अर्जुनी) है।

शायद ऋग वैदिक आर्यों को नदियों के माध्यम से क्षेत्रों के ढलान की अवधारणा का भी ज्ञान था जैसा कि नीचे संकेत दिया गया है (ऋग्वेद.IX, 88.6):

एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशां असृग्रन।। आर.वी.IV,88.6 ।।

नदी के प्रवाह, जिसकी अशांति समुद्रों के मिलने के बाद खो जाती है, के बारे में बात करते समय ऋग्वेद में कहा गया है:

समन्या यन्त्युय यन्त्यन्याः समानमूर्व नघः पृणान्त।। आर.वी.II, 35.3 ।।

ऋग्वेद के श्लोक IV, 18.6 और IV, 19.3 में कहा गया है कि नदियाँ सूर्य और बादल की बेटियाँ हैं। वे अपने रास्ते में आने वाली मिट्टी, चट्टानों आदि को तोड़ते हुए महासागरों की ओर भागती हैं। वे टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होकर बहती हैं:

एता अर्षन्त्यलालाभवन्तीऋतावरीरिव संक्रोशमानाः।
एता वि पुच्छ किमिदं भतन्ति कमापो अद्रिंपिरिधिं रुजान्ति।। आर.वी.IV,18.6 ।।

ऋग्वेद काल के दौरान, आर्य संभवतः अलग-अलग स्थिति में नदी के वेग से परिचित थे। एक श्लोक (VI 24.6) में पहाड़ी नदियों के ढलान से नीचे उच्च गति से बहने का उल्लेख है:

वि त्वदापौ पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः।। आर.वी.VI,24.6 ।।

साम वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के समय तक, भारतीयों ने प्राकृतिक भूगोल और भू-आकृति विज्ञान का पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर लिया था। यह भौगोलिक तकनीकी शब्द – उपहवर (पर्वत ढलान, सामवेद II, 5.9), इरिण (फांक या ऊपर), शिला (पथरीली जगह), क्षयण (रहने योग्य

स्थान), काट (कठिन संचार वाले जंगल), हद (झील), लाप (बीहड़ भूमि या खराब भूमि) (सामवेद, IV, 5.9.1)। साम वेद में, हमें नदी के मुंह का एक संक्षिप्त लेकिन ठीक वर्णन मिलता और नदी के मुंह के विपरीत समुद्र की एक लहर इसमें इसके पानी का एक हिस्सा भेजती है (सामवेद XIV, 4)। अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त (XII) प्राकृतिक भूगोल - पहाड़, बर्फ से ढके पहाड़, वन भूमि, मैदानी क्षेत्र (सम) और बारहमासी धारा या ढलान (पवत) का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है । अथर्ववेद अनुसार अगर पानी का स्रोत पहाड़ों पर है, तो नदी बारहमासी होगी और उच्च गति के साथ बहेगी (अथर्ववेद, 15.3), यथा :

ये नदीनां संस्त्रवन्त्युत्सासः। ए.वी.I.,15.3 ।।

इसी प्रकार, अथर्ववेद के श्लोक II, 3.1 में भी इसी तथ्य का वर्णन किया गया है कि हिमखंड पर्वत से निकलने वाली नदियाँ गर्मियों में भी बहती रहेंगी।

अदो यदवधावत्यवत्कमाधि पर्वतात्।। ए.वी.II,3.1 ।।

गोपथ ब्राह्मण में, घूमकर बहने वाली नदी के लिए विपाट नाम है। इसे भी दो प्रकार से स्रोत या जलप्रपात से जाना जाता था, जिनके नाम हैं गर्म और शीतल (शीतोष्णाविहोत्सौए जी.बी., 8) हैं। प्रसिद्ध महाग्रंथ रामायण में भी विभिन्न प्रकार के भू-आकृति विज्ञान प्रतिमानों के बहुत समृद्ध और सटीक ज्ञान का विवरण है। रामायण में उल्लिखित पानी से संबंधित कुछ भू-वैज्ञानिक प्रतिमान, नदियां और अवनालिका और पठार, गुफायें और फव्वारे (II, 54.42), समतल भूभाग (II, 56.11) नदियों के रेतीले तट (रामायण II, 55.31) हैं : (राम)

सरित्प्रस्त्रवणस्थान् दरीकन्दरनिर्झरान्।। राम. II, 54.42 ।।
समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते। पुण्ये रंस्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने।। राम.II.56.11 ।।

विचित्रवालुकजलां हंससारसनादिनाम्।
रेमेजनकराजस्य सुता प्रेक्ष्य तदा नदीम्।। राम. II,55.31 ।।

गंगा द्वारा संचित भूमि को घना और पार करने में कठिन बताया गया है (रामायण। II, 85.4),यथा:

कतरेण गमिष्यामि भरद्वाजाश्रमं यथा।
गहानोयं भृशं देशो गङ्गानूपो दुरत्ययः।। राम. II,85.4 ।।

पानी के झरने (II, 94.13) और एक नदी के अवतरण (II, 103.25) का ज्ञान नीचे वर्णित है:

जलप्रपातैरुदभेदैर्निष्पन्दैश्च व्कचित्।
स्त्रवदिभर्भत्ययं शैलः स्त्रवन्मद इव द्विपः।। **राम.** II,94.13 ।।

नर्दी मन्दाकिनी रम्यां सदा पुष्पितकाननाम्।। **राम.** II,103.24 ।।

शीघ्र स्त्रोतसमासाघ तीर्थ शिवमकर्दमम्।
सिषिचुस्तूदकं राजे तत एतद् भवत्विति।। **राम.**II,103.25 ।।

बर्फ के पिघलने के बाद, एक पहाड़ी स्थलाकृति कितनी आकर्षक हो जाती है, इसे इस प्रकार से वर्णित किया गया है -हिमात्यये नगमिव चारूकन्दरम (रामायण II, 7.15)। महाकाव्य के लेखक ने "गैर-प्रतिरोधी या नरम खड़े नदी तट पर नदी के कटाव को भी निम्नवत चिह्नित किया है:

रुणद्वि मृदु सोत्सेधं तीरमम्बुरयो यथा।। **राम.**II,63.46 ।।
चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः।। **राम.**,V,34.19 ।।
सीदन्ति च तदा यक्षाः कूला इव जलेन ह।। **राम.**,VII,14.18 ।।

रामायण के श्लोक 23.42 में, पहाड़ों पर वर्षा की कटाव-संबंधी विनाशकारी प्रकिया के बारे में वर्णन किया गया है। अर्थात:

सायकैश्चापवकभ्रष्टैर्वज्रकल्पैः सुदारुणैः।
दारयन्ति स्म संकुद्वामेघा इव महागिरिम्।। **राम.**, VII, 23.42 ।।

महाभारत हिमालय पर्वतों को तीन क्षेत्रों में विभाजित करता है। इसमें कई बार रेगिस्तान के बड़े भूभागों का उल्लेख किया गया है (I, 70.2)। कुछ संदर्भ में 'नदीकच्छ' शब्द का प्रयोग किया गया है। शायद यह उस भू भाग को बताता है जिसे आजकल डेल्टा कहा जाता है।

एक एवोत्तमवलः क्षुत्पिपासाश्रमान्वितः।
स वनस्यान्तमासाघ महच्छून्यं समासदत्।। **एम.बी.**,I,70.2 ।।

नदीकच्छोद्भवं कान्तमुच्छतध्वज संनिभम।। **एम.बी.**,I,70.17 ।।

पाणिनि की अष्टाध्यायी (600 – 700 ईसा पूर्व) में हमें कई महत्वपूर्ण भू-आकृति विज्ञान प्रतिमानों के बारे में पता चलता है। भाषा विज्ञानी बहती और अपने किनारों को तोड़ती नदी को 'भिन्घ' और जो जल-प्लावन करती है उसे उदध्व कहते हैं ; (III, 1.15)। ग्लेशियर को हिमानी (IV, 1.49) है, यथा:

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्मृड़हिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणमानुक।।**अष्टाध्यायी**.,IV,1.49।।

मौर्यकाल के दौरान कौटिल्य (4 वीं शताब्दी ईसा पूर्व) द्वारा अर्थशास्त्र में स्थलाकृति और भू-आकृति विज्ञान पर बहुत अच्छी तरह से चर्चा की गई है। हिमालय और महासागर के बीच विभिन्न प्रकार की भूमि जैसे "जंगलों, गांवों, झरनों, समतल मैदानों और असमान जमीन" का उल्लेख किया गया है (अर्थशास्त्र, शामशास्त्री द्वारा अनुवाद पेज 404)। विभिन्न स्थानों पर उन्होंने उपजाऊ, बंजर, खेती योग्य, अनुपयोगी और बेकार भूमि की बात की है, जिससे पता चलता है कि उस समय उन्हें मिट्टी के विज्ञान का भी अच्छा ज्ञान था।

वायु पुराण में विभिन्न प्रकार की स्थलाकृति अर्थात् झीलों, घाटियों, बंजर पटरियों (अध्याय 38 (38.36)), पहाड़ों के बीच चट्टानी दर्रों (अन्तदोणी) (38.36) का उल्लेख किया गया है ।

पश्चिमायां दिशि तथा येन्तरद्रोणिविस्तराः।
तान्वर्ण्यमानांस्तत्वेन श्रृणुतेमान्द्विजोत्तमाः।। **वायु**.,38.36 ।।

वायु पुराण के अध्याय 38 में पहाड़ी क्षेत्र (38.78) में बड़ी संख्या में गर्म स्रोतों के बारे में भी बताया गया है।

तथा हयनलतप्तानि सरांसि द्विजसत्तमाः।
शैलकुक्ष्यन्तरस्थानि सहस्त्राणि शतानि च।। **वायु**.,38.78 ।।

मार्कंडेय पुराण (53.21-22) में, हमें एक विलक्षण प्रकार की स्थलाकृति जो "किमपुरुसावेरसा और सात अन्य देश" में पाई जाती है जहां पानी जमीन से बुलबुले के रूप में बाहर आता है, के बारे में वर्णन मिलता है यथा:

नवस्वपि च वर्षेषु सप्त सप्तकुलाचलाः।
एकेकस्त्रिस्त था देशे नघश्चाद्रि विनिः सृताः।। **मार्कंडेय** P.53.21 ।।

यानि किं पुरुषाघानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तमः।
तेषूदिभज्जानि तोयानि नैवं वार्यत्र भारते।। **मार्कंडेय** P.53.22 ।।

विष्णु पुराण (II, 5.3) उप-स्थलीय क्षेत्र की मिट्टी को सात वर्गों में वर्गीकृत करता है। (1) काली, (2) सफेद या पीली, (3) नीली या लाल, (4) पीली, (5) बजरीला, (6) पहाड़ी या पथरीली और (7) सुनहरी।

शुक्लकृष्णाः पीताः शर्कराः शैलकाज्वनाः।
भुमयो यत्र मैत्रेय वरप्रासादमाण्डिता।। **विष्णु**.,II,5.3 ।।

वृहत्सेत्रासमसा (6-7 शताब्दी ईसवी) (त्रिपाठी, 1969) में कई वैज्ञानिक और गणितीय संकेतांक हैं जो कुछ जल-सर्वेक्षण संबंधी या जलविज्ञानीय नियमों के अनुरूप हैं। अंगुतारनिकाय (400 ईसा पूर्व से पहले) ने झीलों को चार श्रेणियों (भाग II, पृष्ठ 105, त्रिपाठी, 1969) में वर्गीकृत किया है।

उपसंहार

उपरोक्त चर्चाओं से, हम देखते हैं कि प्राचीन भारत में, धारा प्रवाह और भू-आकृति का ज्ञान वैज्ञानिक तर्ज पर अच्छी तरह से विकसित था। सिंचाई और घरेलू उद्देश्यों के लिए उस समय के दौरान कई जलीय संरचनाएँ निर्मित थीं । एक बहती नदी के माध्यम से क्षेत्र के ढलान और विभिन्न चरणों में नदी के वेग जानने की तकनीक का विकास किया गया था। साथ ही पर्वतीय नदियाँ आमतौर पर बारहमासी होती हैं और उनके द्वारा समय-समय पर बाढ़ के मैदानों में उपजाऊ मिट्टी का निक्षेपण किया जाता है, उस समय पर ज्ञात था जो कि आधुनिक अनुभव के अनुरूप है। बाढ़ से बचाव के लिए बांधों में जलमार्ग की व्यवस्था भी की गई थी । विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियां जैसे स्रोत, जलप्रपात, पहाड़, पठार, अपरदित भूमि आदि के साथ-साथ कई भौगोलिक शब्द जैसे शिला, इरिण, क्षयण, लोप उपयोग में थे। भूमि का वर्गीकरण जैसे उपजाऊ, अनुपजाऊ, खेती योग्य, बंजर भूमि आदि और मिट्टी वर्गीकरण, जैसे कि काला, पीला, लाल, बजरी, कंकर आदि चौथी शताब्दी ई.पू से पहले अच्छी तरह से प्रचलन में थे। वर्तमान में भी ये प्रचलन में हैं और इसलिए, इस क्षेत्र में प्राचीन भारतीयों की उपलब्धि को महत्वपूर्ण माना जा सकता है ।

अध्याय-6

भूजल

एशिया के शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में, जहां मनुष्य की गतिविधियों को जल की उपस्थिति नियंत्रित करती थी, वहां पर प्राचीन काल से ही भूजल का विकास और उपयोग बहुत महत्वपूर्ण रहा है । इतिहास के प्रारंभ से हाल के समय तक, झरनों और नालों के जल स्रोतों ने विवाद पैदा किया है तथा यह एक बहुत अधिक अटकलों और विवादों का विषय रहा है। मोहनजो-दारो कांस्य युग (लगभग 2450 ईसा पूर्व) के दौरान सिंधु सभ्यता का एक प्रमुख शहरी केंद्र था। हाल ही में, एंजेलकिस और झेंग (2015) ने पाया कि शहर को कम से कम 700 कुओं से जल मिल रहा था। इन कुओं का आकर गोलाकार से लेकर पीपल के पत्ते के आकार का था (खान, 2014)। हड़प्पा के प्रमुख स्थल लोथल में (लगभग 2600 ईसा पूर्व निर्मित) खोजे गए कुओं को चित्र 6.1 में दर्शाया गया है।

चित्र 6.1: लोथल में खोजे गए 2600 ई.पू. के कुएं (स्रोत: **https://rainwaterharvesting.files.wordpress.com)**

भूजल का प्राचीन पश्चिमी विज्ञान, जो आम तौर पर यह मानता था कि झरनों से आने वाला पानी वर्षा से प्राप्त नहीं किया जा सकता है, उनके विश्वास पर आधारित था कि: (i) वर्षा मात्रा में अपर्याप्त थी और (ii) पृथ्वी सतह वर्षा के पानी को नीचे प्रवेश की अनुमति के लिए बहुत अधिक अभेद्य थी । जो उपरोक्त निराधार सिद्धांतों के विपरीत, प्राचीन भारतीय साहित्य में भूजल पर बहुत मूल्यवान और उन्नत वैज्ञानिक संभाषण हैं।

ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद वेद में हमें जलविज्ञानीय चक्र और कुओं आदि के माध्यम से जल उपयोग की अवधारणाएँ मिलती हैं, जो स्पष्ट रूप से भूजल के उपयोग को दर्शाती हैं। भूजल के क्षेत्र में प्रसिद्ध खगोलशास्त्री, ज्योतिषी और गणितज्ञ, वराहमिहिर (ई. 505-587), वृहद

संहिता लेखक, जो ज्ञान की कई महत्वपूर्ण शाखाओं को सीखने के लिए सम्मानित हैं, उनका 'डकार्गलम' नामक 54वा अध्याय, भूजल की खोज और विभिन्न सतह विशेषताएँ के साथ उपयोग से संबंधित है, जिसका उपयोग 2.29 मीटर से लेकर 171.45 मीटर की गहराई तक के भूजल के स्रोतों का पता लगाने के लिए जलविज्ञानीय संकेतक के रूप में उपयोग किया जाता है (प्रसाद, 1980)। इस प्राचीन संस्कृत कार्य में वर्णित जलविज्ञानीय संकेतो में विभिन्न पौधों की प्रजातियां, उनकी आकारिकी और शारीरिक विशेषताएं, दीमक के टीले, भूभौतिकीय विशेषताएं, मिट्टी और चट्टानें शामिल हैं। ये सभी संकेतक एक सूक्ष्म वातावरण में जैविक और भूवैज्ञानिक सामग्रियों के लिए विशिष्ट प्रतिक्रियाओं में भूजल पारिस्थितिकी तंत्र में उच्च सापेक्ष आर्द्रता के परिणाम स्वरूप, एक शुष्क या अर्ध शुष्क क्षेत्र में विकसित के अलावा कुछ नहीं हैं । पानी के जल स्तर में स्थान के अनुसार भिन्नता, गर्म और ठंडे झरनों, कुओं के माध्यम से भूजल उपयोग, कुओं के निर्माण को विधियां और उपकरण डकारगलम में अच्छी तरह से वर्णित है (जैन इत्यादि , 2007)।

मनु द्वारा डकार्गलम (भूमिगत जल का विज्ञान) पर लिखे ग्रंथ का उल्लेख वृहद संहिता में किया गया है। नवीनतम समय तक उनका समय (400BC-200BC) होना चाहिए। वराहमिहिर का मानना है कि मनुना विरचितं दकार्गलम स्पष्ट रूप से इस विज्ञान में मनु के योगदान को इंगित करता है। यह भी इंगित करता है कि ईसा से कई शताब्दियों पहले भारत में स्वतन्त्र रूप से इसे स्थानीय लोगो द्वारा विकसित किया गया था। वराहमिहिर ने 'सारस्वत' द्वारा विज्ञानं पर लिखित एक और ग्रंथ का उपयोग भूमिगत पानी और पानी के स्तर के लिए किया है। निःसन्देह

किसान (मनु) अपने पूर्व उत्तरवर्ती को मानवा डकार्गलम (वृहत् संहिता, 54.99) को वरीयता देते हैं।

सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत् कृतं तलवलोक्य।
आर्याभिः कृतमेतद्वृत्तैरपि मानवं वक्ष्ये।। वृ.सं.54.99 ।।

जहां तक भूमिगत जल और जल तालिका का एक विज्ञान के रूप में संबंध है, वृहत् संहिता 54वे अध्याय जो 'डकार्गलम' के रूप में नामित है, का संक्षिप्त सर्वेक्षण नीचे दिया गया है। विस्तृत शब्द 'डकार्गलम' के अलावा, दो अन्य तकनीकी शब्दो शिरा और शिराविज्ञानं का उपयोग इस अध्याय में किया गया है (श्लोक 54.1, 54.61-62) ।

धर्म्य यशंस्यं च वदाम्यतोहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः।
पुंसां यथाग्ड़ेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्न संस्था।। वृ.सं.54.1 ।।

मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि।
ग्रीव करभाणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति।। वृ.सं.54.62 ।।

शिरा शब्द का तात्पर्य पानी की धमनियों या जलधाराओं से होता है और शिराविज्ञानं वास्तव में जल स्तर का अर्थ प्रदान करता है । ऊपर श्लोक 54.1 हमें बताता है कि कुछ स्थानों पर पानी का स्तर अधिक है और दूसरों में यह कम है तथा यह मानव शरीर में नसों के समान है। श्लोक 54.2 से हम पता चलता है कि जल तालिका वर्षा जल का एक जटिल प्रकार्य है।

एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात।
ननारसत्वं बहुवर्णतां एवं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव।। वृ.सं.54.2 ।।

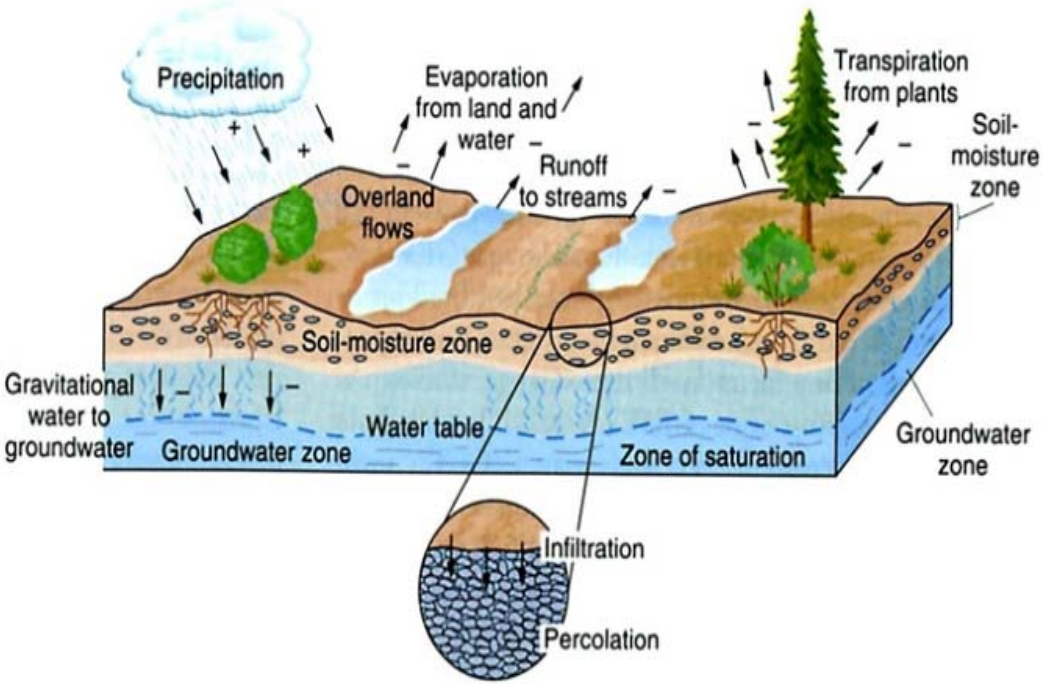

चित्र 6.2: विभिन्न क्षेत्रों को दिखाते हुए अबाधित जलभृत: सबसे ऊपर मृदा नमी जहाँ पर वर्षा जल भौम जलस्तर की तरफ नीचे की ओर रिसता है जहाँ सभी खुले छिद्र स्थान भरे हुए या संतृप्त होते हैं (स्रोत: UNO, अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम)

इसका अर्थ है, जो पानी आकाश से गिरता है, उसमें मूल रूप से एक जैसा ही रंग व स्वाद होता है, लेकिन पृथ्वी की सतह पर नीचे और अन्त:स्रवण के बाद अलग रंग और स्वाद को ग्रहण करता है। चित्र 6.2 अबाधित जलभृत के लिए विभिन्न क्षेत्रों में जाने वाले भूजल की अंतःस्पदंन और अन्त:स्रवण प्रक्रिया को दर्शाता है।

'डकार्गलम' के बाद के छंदों में, उप-क्षेत्र में पानी की उपस्थिति और विभिन्न स्थानों पर इसकी गहराई के प्रकार दिए गए हैं। श्लोक 54.3, 54.4 और 54.55 हमें सूचित करते हैं कि उप-क्षेत्रों वाली धाराएँ सभी तिमाहियों में वर्षा के पानी द्वारा पोषित हैं और नौ धमनियों के अलावा, हजारों और भी हैं जो विभिन्न दिशाओं में बहती हैं:

पुरुहूतानलयमनिऋतिवरूणपवनेन्दुशंकरा देवाः।
विज्ञतव्याः क्रमशः प्राच्याघानां दिशां पतयः।। वृ.सं.54.3 ।।

दिक्पतिराज्ज्ञा च शिरा नवमी मध्ये महाशिशनाम्बी।
एताभयोत्याः शतशो विनिः सृता नाममिः प्रथिताः।। वृ.सं.54.4 ।।

पातालाटूर्ध्वाशिरा शुभा चतुर्दिक्षु संस्थितता याश्च।
कोणदिगुत्था न शुभाः शिरानिमित्तान्यतो वक्ष्ये।। वृ.सं.54.5 ।।

चट्टान या मिट्टी की संरचना और पृथ्वी की सतह से भौम जलस्तर की गहराई को विभिन्न छंदों में सही ढंग से वर्णित किया गया है। श्लोक 54.7 में भेद्य और अभेद्य परतों के साथ जल की उपस्थिति के विभिन्न लक्षणों का वर्णन किया गया है।

चिन्हमपि चार्धपुरुषे मण्डूकः पाण्डुरोश मृत पीता।
पुटभेदकश्च तस्मन् पाषाणो भवति तोयमधः।। वृ.सं.54.7 ।।

भावार्थ: खुदाई करने पर हमें आधे पुरुषा (1 पुरुषा = सीधे उठे हाथो सहित खड़े व्यक्ति की ऊंचाई = 7.5 फीट) की गहराई पर पीला मेंढक मिलेगा फिर पीली मिट्टी, फिर चट्टान और फिर पर्याप्त मात्रा में पानी।

इसी तरह, कई अन्य छंदों में लगभग 70 क्षेत्र स्थितियों या पारिस्थितिक विस्तार का वर्णन किया गया है, जिनसे भूमिगत झरनों की उपस्थिति का विस्तार करना संभव होगा। वास्तव में वराहमिहिर द्वारा वर्णित भूमिगत पानी की खोज की तकनीक, इलाके में प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले विशिष्ट संकेतों के एक करीबी अवलोकन पर निर्भर करती है, जिसमें वनस्पति, जीव, चट्टानें, मिट्टी और खनिज शामिल हैं, जिनकी स्थिति और भिन्नता तार्किक या अनुभवजन्य रूप से आसपास के क्षेत्र में भूमिगत झरनों की उपस्थिति से जुड़ी हो सकती हैं।

वराहमिहिर द्वारा दिए गए विस्तृत विवरण में एक चौंकाने वाले कारक भूमिगत जल के सूचक के रूप में दीमक की गांठों की भूमिका है । भूमिगत जल की खोज के अलावा, कुछ अध्यायों के श्लोक, कुओं की खुदाई, प्रचलित हवाएं के संदर्भ के साथ उनके संरेखण, कठोर पथरीली परतो से निपटना, पत्थर तोड़ने वाली छेनी तेज करना और मिलाना और उनके गर्मी उपचार, आपत्तिजनक, स्वाद ,गंध वाली पानी के जड़ी बूटियों के साथ इलाज करना, लकड़ी लट्ठो और पत्थरों और पेड़ के रोपण के साथ किनारों का संरक्षण और ऐसे अन्य संबंधित मामले के विषयों से संबंधित हैं ।

वृहत् संहिता के लगभग तैंतीस श्लोक, अकेले दीमक या अन्य वनस्पति के साथ जुड़े हुए हैं, तीस अकेले वनस्पति कारकों के साथ और शेष अन्य कारकों का उपयोग करके अन्वेषण में मदद करने के लिए हैं ।

जम्बूवृक्षस्य प्राग्वल्मीको यदि भवेत समीपस्थः।
तस्माददक्षिपपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वेय स्वादु।। वृ.सं.54.9 ।।

उदगर्जुनस्य दृश्यो बल्मीको यदि ततोर्जुनाद्वस्तैः।
त्रिभिरम्बु भवति पुरुषैस्त्रभिरर्धसमन्वितैः पश्चात।। वृ.सं.54.12 ।।

भावार्थ: यदि जम्बू वृक्ष के पूर्व में पास में एक दीमक का टीला हो, तो पेड़ के दक्षिण में तीन हाथ की दूरी पर दो पुरुशों की गहराई पर, लंबे समय तक प्राप्त होने वाला बहुत सारा मीठा पानी होता है (54.9)। इसी प्रकार, उत्तर में दीमक के टीले वाला अर्जुन के पेड़ के पश्चिम में 3 हाथ की दूरी पर 3.5 पुरुशों की गहराई पर पानी दिखाता है।

चित्ताकर्षी मिट्टी संरचना जिसे आम भाषा 'एंट-हिल्स' के रूप में जाना जाता है उस टीले के निर्माण में दीमक की टीले बनाने वाली क़िस्म जिम्मेदार हैं, इस टीले को वैज्ञानिकों द्वारा दीमक का नोल- माउंड या स्पियर्स कहा जाता है। ये उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय परिदृश्य की सबसे अधिक परिचित विशेषताएं हैं और हैं भूमिगत झरनों की खोज की तकनीक में हमारे लिए रुचिकर है। बिना किसी अपवाद के कीटों की पानी की आवश्यकताएं आम तौर पर बहुत अधिक होती हैं और उन्हें जानलेवा शुष्कीकरण से अपनी रक्षा करने के लिए अपने घोंसलो में भली प्रकार से बंद वातावरण के भीतर या पृथ्वी से ढकी दीर्घाओं के भीतर रहने और काम करने की आवश्यकता होती है । राव इत्यादि (1971) के अनुसार व्यावहारिक रूप से घोंसले के भीतर का वातावरण संतृप्ति नमी स्तर (99-100% सापेक्ष आर्द्रता) पर बनाए रखना पड़ता है । यह सामान्य अवलोकन का विषय है कि जब भी दीमक का घोंसला या आने जाने का रास्ता क्षतिग्रस्त होता है, तो कीड़े तुरंत घोंसले के भीतर क्षतिग्रस्त स्थान पा आ जाते हैं और गीली मिट्टी से मरम्मत करते हैं । साक्ष्य के समग्र विचार से यह निष्कर्ष निकालना सुरक्षित प्रतीत होता है कि आम तौर पर कीड़े जमीनी सतह के स्रोत के पास आसानी से उपलब्ध प्रत्येक पानी का उपयोग करते हैं, परन्तु गंभीर जलवायु तनाव की स्थितियों के तहत, वे भौम जल स्तर तक उतरते हैं चाहे वह कितनी भी गहरा हो। इसलिए, टीले बनाने वाली दीमक की एक अच्छी तरह से विकसित, सक्रिय, दीर्घस्थायी कॉलोनी को निकटता में भूमिगत झरनों के संकेत के रूप में लिया जा सकता है।

ई.जी.के. राव (1979) ने तटीय मैसूर और साथ ही डेक्कन पठार क्षेत्र के शुष्क जंगल के क्षेत्रों में दीमक की गांठों के संरेखण को देखा और उसी से संबंधित वृहद संहिता के श्लोको के साक्ष्य दिए हैं । वृहद संहिता के आगे के श्लोक से पता चलता है कि लेखक को टीले बनाने वाली दीमक की इस प्रवृत्ति के बारे में पता था ।

बल्मीकानां पक्ड़त्यां यघेकोभयुच्छतः शिरा तदधः।। वृ.सं.54.95 ।।

भावार्थ: यदि दीमक- टीलो की एक पंक्ति में कोई उठा हुआ (लंबा) पाया जाता है, तो उसके भीतर जल वाहिनी पायी जाती है।

इसी तरह, श्लोक 82 में कहा गया है कि यदि पांच दीमकों का समूह एक जगह पाया जाता है और उनमें से मध्य वाली सफेद हो, वहां पर पचपन पुरुषो की गहराई (अर्थात 7.5' X 55 = 412.5 फीट) पर पानी घोषित किया जाना चाहिए।

यह सामान्य अवलोकन का विषय है कि पेड़ों के बिल्कुल पास कई बार दीमक क्षेत्र मिलते हैं; और यह काफी आम दृश्य है कि ये पूरी तरह से घास या वनस्पति द्वारा ढके रहते हैं। कई बार दीमक का पता लगाने के लिए बहुत नज़दीकी अवलोकन की आवश्यक होती है। प्राचीन भारतीय विद्वानो ने नीचे बताए अनुसार भूमिगत झरनों की खोज में इस साहचर्य का काफी उपयोग किया है:

जम्बूस्त्रिवृता मौर्वी शिशुमारी सारिवा शिवा श्यामा।
वीरुधयो वाराही ज्योतिष्मती गरूणवेगा च।। वृ.सं.54.87 ।।

सूकरिकमाषपर्णीव्याध्रपदाश्चेति यघहेर्निलये।
वल्मीकादुत्त्रतात्स्त्रीभिः करैत्स्त्रिपुरूषे तोयम।। वृ.सं.54.88 ।।

भावार्थ: यदि जम्बू, त्रिवृत, मौरव, सिसुमरी, सारिवा, शिव, श्यामा, वराहि, ज्योतिस्मति, गरुदेवगा, सुकारीका, मासपर्णी, व्याघरा पड़ा के पेड़ और लताएँ दीमक के टीले के पास दिखती हैं, तो इसके 3 हाथ उत्तर में 3 पुरषा की गहराई पर जल है ।

उपरोक्त श्लोको में उल्लिखित वनस्पतियों के वानस्पतिक नाम हैं: जंबू (यूजेनिया जाम्बोस, एंगेनिया जम्बोलाना), त्रिवृत (इपोमिया टेरपेथम), मौरवी (संसेवियरिएरेक्सबर्गियाना), सिसुमारी (?), सरिवा (हेमाइडेसमस इंडीकस), सिवा (कई पौधे: कुकुमिस यूटिलिसस, टर्मिनलिया चेबुला, एम्बेलिका ऑफिसिनैलिस, सिनोडोन डेक्टाइलोन), सयामा (इचेनारपस फ्रुक्टेन्स - ब्लैक

क्रीपर, क्रसना सरिवा, धतूरा धातु, अगलला रोक्स-बुर्गीयना, पनिकुम कोलनकम आदि), सुकारिका (ल्य्कोपोडियम इम्ब्रिकाटम, आई. क्लोवेटम), मासपर्नी (ग्लाइसिन डेबाइटिस, जी. लैबिअलिस)।

इसी प्रकार, वृहद संहिता के अध्याय 54 के विभिन्न अन्य श्लोक विभिन्न लक्षणों के संयोजन के साथ भूमिगत जल की खोज से संबंधित हैं, जैसा नीचे दिया गया है :

अतृणे सदृणा यस्मिन सतृणे तृणवर्जिस्मिता महीयत्र।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं वास्यिन।। वृ.सं.54.52 ।।

भावार्थ: यदि किसी घास विहिन स्थान पर, कंही पर घास हो या घास वाले स्थान पर, घास रहित स्थान हो, तो यह पानी या खजाने का संकेत है।

कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेम्भास्त्रिभिः करैः पश्चात्।
खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात्। वृ.सं.54.53 ।।

अर्थ: गैर-कांटेदार पेड़ों या इसके विपरीत के बीच में एक फलता-फूलता काँटेदार पेड़ पश्चिम की ओर 3 हाथो की दूरी पर 3.75 पुरुषो की गहराई पर पानी या खजाने को इंगित करता है ।

यस्यामूष्मा धात्र्यां धूमो वा तत्र वारि नरयुगले।
निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण।। वृ.सं.54.60 ।।

अर्थ: जहां जमीन से धारा या धुआं निकलता है, वहां 2 पुरूषों की गहराई पर प्रचुर मात्रा में पानी की वाहिनी होंगी । वराहमिहिर ने रेगिस्तानी क्षेत्र में भी भूमिगत जल होने की चर्चा की है । वह आगे कहते हैं कि उप - भूभाग धारा या भौम जल स्तर रेगिस्तानी क्षेत्र में ऊंट की गर्दन का आकार लेता है और पृथ्वी की सतह से काफी गहराई पर होता है, यथा:

मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि।
ग्रीवा करभाणाभिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति।। वृ.सं.54.62 ।।

आधुनिक उत्स्रुत कुओं की भूगर्भीय परत पद्धति पूरी तरह से इस बात की पुष्टि करती है।

वृहद संहिता के श्लोक 102 में यह वर्णन किया गया है कि पहाड़ी क्षेत्र में पानी कैसे पाया जाता है।

विभीतको वा मदयान्तिका वा यत्रास्ति तस्मिन पुरुषत्रयेमभः।

स्यात्पवर्तस्योपरि पर्वतोन्यस्तत्रापि मूले पुरुषत्रयेभ्भः।। वृ.सं.54.102 ।।
सशर्करा ताम्रमही कषायं क्षारं धरित्री कपिला करोति।
आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टं मृष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम्।। वृ.सं.54.104 ।।

उपरोक्त छंद (54.104) मिट्टी और पानी का संबंध बताते हैं। यह कहता है कि तांबे के रंग की कंकरीली और रेतीली मिट्टी पानी को कसैला बना देती है। भूरे रंग की मिट्टी क्षारीय पानी को जन्म देती है, पीली मिट्टी पानी को नमकीन बनाती है और नीली मिट्टी में भूमिगत पानी शुद्ध और ताजा हो जाता है।

रामायण में हमें उत्स्रुत कुओं के बारे में पता चलता है। छंद VI, 22.37-38 में कहा गया है कि भगवान राम के तीर द्वारा बनाए गए छेद के माध्यम से गहरी धरती से पानी लगातार बल से निकलता है, यथा :

निपातितः शरो यत्र वज्राशनिसमप्रभः।। राम., VI,22.36 ।।
तस्माद व्रणमुखात तोयमुत्पपात रसातलात।। राम., VI,22.37 ।।

स बभूत तदा कूपो व्रण इत्येव विश्रुतः।
सततं चोत्थितं तोयं समुद्रस्येव दृश्यते।। राम., VI,22.38 ।।

यह वैज्ञानिक रूप से बहुत स्पष्ट है कि उत्स्रुत कुएं बल द्वारा निरन्तर बहते हैं। वायु पुराण में विभिन्न भूमिगत संरचनाओं और स्थलाकृति का भी उल्लेख किया गया है जैसे झीलें, बंजर पथ, घाटी, पहाड़ों के बीच चट्टानी दरार घाटी (अन्दोणी) (38.36)। पुराण के अध्याय 38 में पहाड़ी क्षेत्र में बड़ी संख्या में गर्म झरनों की बात की गई है।

तथा ह्यनत्व तप्तानि सरांसि द्विज सत्तमाः।
शैलकुक्ष्यन्तरस्थानि सहस्त्राणि शतानि च।। वायु.38.78 ।।

गोपथ ब्राह्मण भी दो प्रकार के झरनों या जल प्रपातों से अर्थात् गर्म और ठंडा से परिचित थे। (II, 8)।

जैसा कि पिछले अध्याय में उल्लेख किया गया है, मार्कंडेय पुराण में हमें किमपुरूस्वरस और सात अन्य देशों में पाई जाने वाली एक विलक्षण स्थलाकृति के बारे में पता चलता है जहाँ पानी जमीन से पानी बुदबुदाते हुए निकलता है (55.21-22)।

नवंस्वपि च वर्षेयु सप्त सप्तकुलाचलाः।
रुकैकस्मिस्मस्तथा देशे नघश्चाद्रि–विनिः सृता।। मार्कंडेय.53.21

यानि किंपुरुषाघानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तम।

तेषुदिभज्जानि तोयानि नैवं वार्यत्र भारते।। मार्कंडेय.53.22 ।।

उपरोक्त चर्चाओं से पता चलता है कि वृहद संहिता का अध्याय 54 भूजल अन्वेषण पर एक बहुत महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

उपसंहार:

अध्याय में प्रस्तुत चर्चा और संदर्भ बताते हैं कि भूजल उपस्थिति, वितरण, पूर्वेक्षण और उपयोग की वैज्ञानिक अवधारणाएँ अच्छी तरह से विकसित थी । यही कारण है कि हड़प्पा सभ्यता के लोग कुओं की खुदाई करने और भूजल के उपयोग करने में सक्षम थे । शारीरिक विशेषताओं, दीमक के टीले, भूभौतिकीय विशेषताएं, मिट्टी, वनस्पति, जीव, चट्टानें और खनिज आदि, जैसे जल विज्ञानीय संकेतकों के द्वारा भूजल की उपस्थिति का पता लगाया गया था, जो पूरी तरह से वैज्ञानिक है। प्राचीन भारतीयों द्वारा दीमक के टीले को भूजल के एक महत्वपूर्ण संकेतक के रूप में इस्तेमाल किया गया था। आधुनिक युग में भी इन की उपस्थिति और भिन्नता भूमिगत झरनों की उपलब्धता के साथ संकेतक के रूप जुडी हुई है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी यह स्थापित किया है कि टीले के भीतर नमी को व्यावहारिक रूप से संतृप्ति स्तर पर (99-100%) रखा जाता है जो निकट में भूमिगत झरनों की उपस्थिति का संकेत है । ईसा से कई शताब्दियों पूर्व भारतीयों को भूमिगत जल धारक संरचनाओं, विभिन्न स्थानों पर भूजल के प्रवाह की दिशा में परिवर्तन, भिन्न भिन्न स्थान पर उच्च और निम्न भौम जल स्तर, गर्म और ठंडे झरने, कुओं के माध्यम से भूजल उपयोग, कुओं के निर्माण के तरीके और उपकरण, भूमिगत जल की गुणवत्ता और यहां तक कि उत्स्रुत कूप प्रणाली के बारे में पता था । भूजल का यह उच्च स्तर का ज्ञान प्राचीन काल में भारत के स्वदेशी लोगों द्वारा पूरी तरह से स्वतंत्र रूप से विकसित किया गया था ।

अध्याय-7

जल गुणवत्ता और अपशिष्ट जल प्रबंधन

पूरे इतिहास में, पानी के उपयोग के स्वास्थ्य, बीमारी और कल्याण के प्रयोग के विभिन्न अनुभवों और व्याख्याओं और मूल्य को प्रतिबिंबित किया है। यह विचार कि पानी भौतिक, सामाजिक और पारिस्थितिक वातावरण के बीच एक सामंजस्य को दर्शाता है पहले से ही प्राचीन चिकित्सा में देखा जा सकता है। लगभग 4,000 साल पहले, भारतीयों को पानी को उबालकर शुद्ध करने का ज्ञान था। बाद में, पानी की गुणवत्ता को बेहतर बनाने के लिए, पानी छानने और उबालने, दोनों का उपयोग करने के लिए हिप्पोक्रेट्स जाना जाता है (यूनेस्को, आई.एच.पी, 2011)। एक समय में आधुनिक वैज्ञानिक, वर्षा जल को आसुत जल की तरह ही शुद्ध ही मानते थे । लेकिन बाद के अध्ययनों से पता चला कि ऐसा नहीं है। वर्षा का पानी, चारित्रिक रूप से जलचक्र में सबसे शुद्ध पानी है, लेकिन फिर भी पानी में 1 से कम से कई सौ मिलीग्राम प्रति लीटर घुलित पदार्थ वातावरण में वर्षा जल के गिरते समय इकट्ठा हो सकता है । वर्षा जल, जब ये पृथ्वी की और गिरता है, उसमे हवा से गैसें और धूल या अन्य वायु जनित सामग्रियों के कणों को घुलने का पर्याप्त अवसर मिलता है । इस प्रकार, वर्षा जल एक मिश्रित इलेक्ट्रोलाइट बन जाता है जिसमें विभिन्न मात्रा में प्रमुख और लघु धनायन तथा ऋणायन होते हैं । सोडियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, कैल्शियम, क्लोराइड, बाइकार्बोनेट और सल्फेट प्रमुख घटक हैं । अमोनिया और विभिन्न नाइट्रोजन यौगिक आमतौर पर मौजूद होते हैं। औद्योगिक क्षेत्रों, बड़े जनसंख्या केंद्रों और रेगिस्तानी क्षेत्रों में स्थानीय रूप से धूल के कण जुड़ जाते हैं । भूमि आधारित कारकों में जो वर्षा जल की संरचना को बदलने में महत्वपूर्ण हो सकते हैं, हैं ज्वालामुखी, वाष्पमुख , झरने और धूल के कणों द्वारा उत्सर्जित सल्फर। महासागर के आसपास वर्षा के पानी में आमतौर पर 1.0 मिली ग्राम प्रति लीटर से कई दस मिलीग्राम प्रति लीटर तक क्लोराइड होता है लेकिन इसकी मापी गई मात्रा आम तौर पर भूमि की दिशा में तेजी से घटती जाती है।

वेदों में, विशेष रूप से अथर्ववेद में, हमें जल गुणवत्ता के कुछ संदर्भ मिलते हैं । चरक संहिता, सुश्रुत संहिता (दोनों पूर्व या प्रारंभिक बौद्ध युग के दौरान अवधि की), और अष्टांग हृदय संहिता (9 वीं शताब्दी ईस्वी), आयुर्वेद (जीवन के विज्ञान) पर पहले के युग के दौरान संचित ज्ञान के भंडार हैं । इन सभी प्राचीन मानक ग्रंथों में, पानी की गुणवत्ता पर संभाषण आयुर्वेद का महत्वपूर्ण पहलू है । भावमिस्रा का भाव प्रकाश (16 वीं शताब्दी ईस्वी), जो करीब - करीब प्राचीन काल सभी आयुर्वेदिक ग्रंथों का एक संकलन, भी विस्तृत रूप से पानी की गुणवत्ता से संबंधित है ।

ऋग्वेद में श्लोक V, 83.4 में वृक्षारोपण, वन संरक्षण और यज्ञ के बारे में बताया गया है ताकि मानव जाति की भलाई के लिए शुद्ध और स्वस्थ वातावरण और अच्छी गुणवत्ता के जल का निर्माण हो सके:

प्र वाता वन्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वम्भै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथ्वी रेतसावति।।आर.वी.,V,83.4 ।।

इसी तरह, ऋग्वेद के छंद VII, 50.4 में भी पानी की शुद्धि के लिए यज्ञ के महत्व का पता चलता है । यजुर वेद में (I, 12), हम पदार्थों के संयोजन के कारण संदूषण और पदार्थों में छोटे छोटे कणों में तोड़कर, यानी यज्ञ द्वारा अग्नि को शुद्धिकरण के प्रमुख स्रोत के रूप में पढ़ते हैं,, गर्मी और सूर्यकी किरणें पानी को शुद्ध करने के स्रोत हैं। अर्थात

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्याच्छिण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।
देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेषवो ग्र इममघ यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिं सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम।। वाई.वी.I.12 ।।

साम वेद (पिछला II.187) में, हमने पढ़ा है कि सूर्य की किरणें दही जैसी सफेद वर्षा के शुद्ध रूप में आने का कारण बनती हैं:

इस्मास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम।
एनामृतस्य पिप्युषी।। एस.वी.P,II.187 ।।

अथर्ववेद (ए.वी., 22.5) का एक श्लोक अधिक घास, उच्च वर्षा और खराब जल गुणवत्ता वाले क्षेत्रों में होने वाली बीमारियों के खिलाफ निवारक उपाय करने का निर्देश देता है। यथा .

ओकों अस्य मूजवन्त ओकों अस्य महावृषाः।
यावज्जातस्तक्मं स्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः।। ए.वी.V,22.5 ।।

प्रसिद्ध महाकाव्य महाभारत (XII, 184.31 और 224.42) में हमने पानी के स्वाद के अनुसार उसके विभिन्न गुणों के बारे में पढ़ा है । इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि उन दिनों के दौरान इसके स्वाद के अनुसार पानी की गुणवत्ता को निर्दिष्ट करने के प्रयास किए गए थे।

रसो बहुविधः प्रोक्त ऋषिभिः प्राथियात्मभिः।
मधुरो लवणस्तिक्तः कषायोम्लः कटृस्तथा।। एम.बी.XII.184.3 ।।

वृहत संहिता के “डकारगाला” नामक 54 वें अध्याय में, हमें में पानी की गुणवत्ता के कई संदर्भ मिलते हैं। श्लोक 54.2 में कहा गया है कि भूजल की जांच उसके पर्यावरण के संबंध में की जानी चाहिए।

एकेन वर्णेन रसेन चाम्भरच्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात।
नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव।। वृ.सं.54.2 ।।

सशर्करा ताम्रमही कषायं क्षारं धारित्री कपिला करोति।
आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टं मृष्टं प्यो नीलवसुन्धरायाम।। वृ.सं.54.104 ।।

वृहत संहिता (54.104) में मिट्टी के रंग को पानी की गुणवत्ता का सूचक बताया गया है। यह कहता है कि " तांबे युक्त कंकड़ मय और रेतीली मिट्टी पानी को कसैला बना देती है। भूरी रंग की मिट्टी क्षारीय पानी को जन्म देती है, पीली सफेद मिट्टी को खारे पानी और नीले रंग की मिट्टी पानी को शुद्ध और मीठा बनाती है"। पेयजल की गुणवत्ता में सुधार के लिए एक जल उपचार विधि भी सुझाई गई थी :

अज्जनमुस्तोशीरैः शराजकोशातकामलकचूर्णैः।
कतकफलसमायुक्तैर्योगः कूपे प्रदातव्यः।। वृ.सं.54.121 ।।

कलुषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं यदि वाशुभगन्धि भवेत।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगन्धि गणैरपरैश्च युतम।। वृ.सं.54.122 ।।

उपर्युक्त श्लोक कहते हैं कि अंजनम का एक मिश्रण (कोलिरियम, ऑटिमोनी या अमोनियम का अर्क), मस्त कंद (नागरमोथा), उसिरा (खास), राजकोसटक का पाउडर (तोरई), और अमलका (आवला) कटका नट्स के साथ संयुक्त रूप से एक कुएं में डाला जाना चाहिए। यदि पानी गन्दा है, तीखा है, नमकीन, खराब स्वाद और अच्छी गंध का नहीं है , यह स्पष्ट, स्वादिष्ट, सुगंधित और अन्य अच्छे गुण वाला हो जायेगा । इस प्रकार, उस समय वराहमिहिर ने दूषित पानी के स्रोत से पीने योग्य पानी प्राप्त करने के लिए एक सरल विधि प्रस्तुत की थी । उपरोक्त सभी पौधों की सामग्री औषधीय मूल्य की है और आमतौर पर भारत के लगभग सभी हिस्सों में उपलब्ध हैं। प्राचीन चिकित्सा ग्रंथों में जैसे कि चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांगह्रदय संहिता (वाग्भट्ट द्वारा), जिन्हें सामूहिक रूप से ब्रह्त्रेय (महान त्रय) के रूप में जाना जाता है, और तीन अन्य आयुर्वेदिक ग्रंथ माधवनिदंम, सारंगधारा संहिता और भावप्रकाश, जिसे सामूहिक रूप से लघुत्रेई (छोटी त्रय) के नाम से जाना जाता है, इनमे भी कुछ पानी की गुणवत्ता

के संदर्भ उपलब्ध हैं। भाव प्रकाश में कई हिस्से चरक, सुश्रुत, वाग्भट और तांत्रिक के चिकित्सा ग्रंथों से शामिल किये गए हैं । भाव प्रकाश का दसवां अध्याय जिसमे 86 श्लोक हैं ,वारी वर्गाह नाम से जाना जाता है , पानी के विभिन्न पहलुओं से संबंधित है। यहाँ उपरोक्त पाठ (वारी वर्गाह भाग का 10 अध्याय) में दिये गये पानी की गुणवत्ता के कुछ पहलुओं को दिया गया है और प्रसाद (1979) द्वारा भी इसका विश्लेषण किया गया है। श्लोक 2 में जल के महत्वपूर्ण गुण और जीवों के लिए इसकी उपयोगिता बताई गई है, जैसे:

पानीयं श्रमनाशनं क्लमहरं मूर्छापिपासाहरं तन्द्राच्छर्दिविबन्धहद्वलकरं निद्राहरं तर्पणम।। X.2 ।।

अर्थ: "पानी शरीर और मन की थकान को दूर करता है, कमजोरी को नष्ट करता है। यह दिल के लिए अच्छा है, संतुष्टि देता है , कोमल, स्पष्ट, रसो का स्रोत है और उल्टी, नींद की प्रवृत्ति और कब्ज को नष्ट करता है।

श्लोक 3 और 4 में, पानी के विभिन्न रूपों का वर्गीकरण और नामकरण इस प्रकार दिया गया है :

पानीयं मुनिभिः प्रोक्तं दित्यं भौममित द्विधा।। **X.3** ।।

दिव्यं चतुर्विधं प्रोवतं धाराजं करकाभवम।
तौषारं च तथा हैमं तेषु धारं गुणाधिकम।। **X.4** ।।

पानी जो आकाश से बरसता है उसे ' दिव्यम ' कहा जाता है और जब यह पृथ्वी पर या भूजल के रूप में एकत्र हो जाता है, तो इसे ऋषियों द्वारा 'भौम' कहा जाता है। 'दिव्यम' जल को चार श्रेणियों में बांटा गया है: 'धाराजलम' आकाश से निरंतर बौछार के रूप में गिरता है, ' करकभवम ' जब यह पत्थरों के टुकड़ों की तरह गिरता है, 'तौसारम' धुएं आदि से मुक्त होता है और 'हाइमम ' हिमालय की बर्फ से बनता है। । इनमें ' धाराजलम ' बेहतर है, जिसमें गुणों की भरमार है।

इसी तरह, श्लोक 25 में स्थलीय जल (भौम जलम) का वर्गीकरण दिया गया है।

भौमयभयौ निगदित्वं प्रथमं त्रिविधं बुधैः।
जाग्डलं परमानूपं ततः साधरणं क्रमात।। **X.25** ।।

इसका अर्थ है, "भौम जलम तीन किस्मों का है जैसे जंगालम, अनुपम, और सुधरनम। उपरोक्त जल विभाजन उन क्षेत्रों की विशेषताओं पर आधारित होते हैं जिन्हें उनकी पर्यावरणीय स्थितियों के अनुसार विभेदित किया जाता है, जैसे:

अल्पोद कोल्पवृक्षश्च पित्तरक्तामयान्वितः।
ज्ञातव्यो जाग्डलो देशस्त्रत्यं जांगलं जलम।। **X.26** ।।

बहम्बुर्वहुवक्षश्च वातश्लेष्मामयान्वितः।
देशोनूप इति ख्यात आनूपं तदभवं जलम्।। **X.27** ।।

मिश्रचिन्हस्तु यो देशः सहि साधारणः स्मतः।
तस्मिन्देशे यदुदकं तन्तु साधरणं स्मृतम।। **X.28** ।।

जाग्डलं सलिलं रक्षं लवणं लघु पित्तनुत।
वन्हिकत्कफहृत्पथ्यं विकारन हरते वहून्।। **X.29** ।।

आनूपं वार्यभिष्यन्दि स्वादु स्निग्धं धनं गुर।
साधरणं तु मधुरं दीपनं शीतलं लघु।
तर्पणं रोचनं तृष्णादाहदोषत्रयप्रणुत।। **X.31** ।।

उपर्युक्त श्लोकों के अनुसार, वे देश जिनमे पेड़ और पानी कम हैं जिससे पित्त और वात विकार पैदा होते हैं वे जांगला क्षेत्र हैं और इन क्षेत्रों में उत्पन्न जल को जांगला पानी कहा जाता है। जिस क्षेत्र में पानी और पेड़ प्रचुर मात्रा में हैं और वात और कफ रोगों को रोकने में सक्षम हैं और इसके जल को अनुपम जल कहा जाता है। ऊपर के दोनों क्षेत्रों की मिश्रित विशेषताओं वाले क्षेत्र को साधारनम क्षेत्र कहा जाता है, और इसके पानी को साधारण जलम कहा जाता है। जांगला का पानी खारा, नरम है, पित्त और कफ को खत्म करता है, पाचन को बढ़ावा देता है, और रोगों में एक अच्छा आहारहै । अनूप पानी स्वादिष्ट, तैलीय, चिपचिपा, कठोर, पाचन को कम करने वाला, कफ को बढ़ावा देने वाला और अन्य विकारों का निर्माता है। साधरण जलम मधुर है, पाचन को बढ़ावा देता है, नरम, ठंडा शांत, सुखद है और त्रिदोष (तीन रोग) को समाप्त करता है। इस प्रकार, हम यहाँ देखते हैं कि पानी के अध्ययन में , पारिस्थितिकी के कारकों की एक बड़ी संख्या पर भी विचार किया गया है।

जल गुणवत्ता मानक

ऊपर दिए गए विभिन्न संदर्भों में, विभिन्न स्थानों पर, विशदं (स्पष्ट, स्वच्छ, शुद्ध, पारदर्शी, आदि), स्वच्छम (स्पष्ट), निर्दोष (दोष रहित), कलुषम (प्रदूषित) और निर्मल त्वं (प्रदूषणरहित) जैसे शब्द मिलते हैं ।

श्लोक 78-81 दूषित पानी की विशेषताओं का इस प्रकार वर्णन करते हैं:

पिच्छिलं कृमिलं क्लिन्नं पर्णशैवालदकर्दमैः।
विवर्ण विरसं सान्द्रं दुर्गन्धं न हितं जलम।। **X.78** ।।
कलुषं छन्नमम्भोजपर्णनीलीतृणादिभिः।
दुः स्पर्शनमसंस्पृष्ट सौरचान्द्रमरीचिभिः।। **X.79** ।।

अनार्त्तवं वार्षिकं तु प्रथम तच्च् भूमिगम।
व्यापन्न् परिर्हत्तव्यं सर्वदोषप्रकोपणम।। **X.80** ।।

तत्कुर्यात्स्नानपानाभयां तृष्णाध्मानचिरज्वरान।
कासाग्निमांघाभिष्यन्दकण्डूगण्डादिकं तथा।। **X.81** ।।

इन छंदों के अनुसार "पानी जो चिपचिपि प्रकृति का हो, जिसमें कीड़े हो, और पत्तियों और कीचड़ से खराब हो, खराब रंग के हो, खराब गंध का हो ,वह स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं होता है। गन्दा पानी,.कमल के पत्तों, घास आदि से ढँका पानी और सूर्यया चाँद की रोशनी के बिना, बिना किसी हलचल के, या बिना समय वर्षा के कारण या पहली वर्षा का पानी जो जमीन में इकट्ठा हो जाता है, ऐसा पानी कई विकारों का स्रोत हैं। इस प्रकार, पीने और स्नान के प्रयोजनों के लिए उन्हें निषिद्ध किया जाना चाहिए क्योंकि इस तरह के पानी का उपयोग से तृषा,आध्यामान,जीर्ण ज्वर, अग्नमान्द, कण्डु, गंण्डा आदि रोग होते हैं । अन्य श्लोकों का एक आलोचनात्मक अध्ययन भी विभिन्न उपयोगों के लिए पानी की गुणवत्ता मानक के लिए प्राचीन भारतीयों के दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है।

विभिन्न स्रोतों एवं ऋतु के अनुसार पानी की गुणवत्ता में भिन्नता को श्लोक 59-67 में समझाया गया है ।

हेमन्ते सारसं तोयं ताड़ागं वा हितं स्मृतम।
हेमन्ते विहितं तोयं शिशिरेपि प्रशस्यते।। **X.59** ।।

वसन्तग्रीष्मयोः कौप वाप्यं वा निर्झरं जलम।
नादेयं वारि नादेयं वसन्तग्रीष्मयोर्बुधैः विषवद्वनवृक्षाणां पत्राघैर्दूषितं यतः।। **X.60** ।।

औदभिंद चान्तरिक्षं वा कौपं वा प्रावषि स्मतम्।
शस्तं शररि नादेयं नीरमंशूदकं परम्।। **X.61** ।।

दिवा रविकरैर्जुष्ट निशि शीतकरांशुभिः।
ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम्।। **X.62** ।।

अनभिष्यन्दि निर्दोषमान्तरिक्षजलोपमम्।
बल्यं रसायनं मेध्यं शीतं लघु सुधासमम्।। **X.63** ।।

शरदि स्वच्छमुदयादगस्त्याखिलं हितम्।। **X.64** ।।

पौषे वारि सरोजातं माघे तन्तु तडागजम्।
फाल्गुने कूपसंभूतं चैत्रे चौज्ज्यं हितं मतम्।। **X.65** ।।

भाद्रे कौपं पयः शस्तमाश्विने चौज्ज्यमेव च।
कार्तिके मार्गशीर्षे च जलमात्रं प्रशस्यते।। **X.67** ।।

अर्थ: "हेमंत (सर्दियों, अर्थात् नवंबर- जनवरी) ऋतु के दौरान तालाबों और टैंकों में भरा जल अच्छा है; शिशिर (ठंडा मौसम, यानी जनवरी-मार्च) के दौरान भी यह पानी बेहतर होता है । बसंत (वसंत, अर्थात्, मार्च-मई) और ग्रीष्म (गर्मी, यानी मई-जुलाई) के दौरान कुओं, गहरे कुएँ और चट्टानी झरने से संबंधित पानी अच्छा हैं। बसंत और ग्रीष्म ऋतू के दौरान नदियों के पानी का उपयोग पीने के लिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इन मौसमों के दौरान नदी का पानी जहरीले पेड़ों आदि की पत्तियों से दूषित हो जाता है। वर्षा काल के दौरान औधिबा (आर्टेसियन चरित्र का भूजल) या अंतरिक्षा जल (वायुमंडलीय वर्षा) अच्छा है। शरद काल के दौरान, नदियों का पानी और, दिन के समय सूर्य और रात के समय चंद्रमा द्वारा प्रकाशित पानी, जिसे अमशोदमक कहा जाता है, अच्छा है। अन्सुदक पानी है त्रिदोष का विध्वंसक है , अभिस्यंदा होने का कारण नहीं है और बुरे गुणों से मुक्त है। यह अमशोदमक के बराबर है, मस्तिष्क के लिए अच्छा है, मुलायम और शीतल है । शरद कल के दौरान आकाश में "अगस्त्य " तारे के उदय के बाद सभी पानी पवित्र पवित्र हो जाते हैं । वृद्धा सुश्रुत में कहा गया है कि पौष माह के दौरान झीलों या तालाबों का पानी, माघ मास के दौरान टैंकों का पानी , फाल्गुन के दौरान कुओं का पानी, चैत्र के दौरान चौंज्या (घाटी की धारा का पानी), वैशाख के दौरान नयरझरा जल आदि, ज्येष्ठ के महीनों के दौरान आर्टीशियन चरित्र का पानी, आषाड में कुएं का पानी और कार्तिका और मार्गशीर्ष में सभी प्रकार का पानी अच्छा है "।

पानी की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारक

जैसा कि भाव प्रकाश के उपरोक्त श्लोकों से देखा जा सकता है, हम जल गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कुछ कारकों की पहचान कर सकते हैं , जैसे कि हेम जलम् यानि हिमनद का पानी, भौम जलम् यानि भूजल, नाढय जलम् (नदी का पानी), आदभिद जलम् (भूजल में आर्टेसियन चरित्र के साथ बहने वाला), निर्झर (जल प्रपात वाला जल), तडाग जल (तालाब का पानी), कौप जल (कुओं का पानी), चाज्ज्य जल (यानी घाटी का जल, श्लोक 65) और उनके गुनों का भाव प्रकाशन में वर्णन किया गया है, जो पानी की गुणवत्ता पर भौगोलिक स्थिति के प्रभाव के ज्ञान को दर्शाता है । जैसा कि श्लोक 26-27-28 से पहले वर्णित है, ये स्थितियां पृथ्वी के विभिन्न रूपों, अनूप, जांगल और सधारण में अंतर से संबंधित हैं । पानी की गुणवत्ता पर कृषि की जाने वाली मिट्टी का प्रभाव भी (केदार जल, श्लोक 57) वर्णित है। अर्थात:

केदारः क्षेत्रमुदिदष्टं कैदारं तज्जलं स्मृतम।
कैदारं वायर्यभिष्यन्दि मधुरं गुरू दोषकृत।। **X.57** ।।

यह पानी की गुणवत्ता पर सड़ने वाली वनस्पति के प्रभाव का भी वर्णन करता है। साथ ही पानी में सूर्यकी रोशनी के वेघन की कमी और पानी के ठहराव के पानी की गुणवत्ता पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा की गई है (श्लोक 78 से 81)। ये श्लोक बताते हैं कि आधुनिक जल गुणवत्ता संबंधी अवधारणाएँ भारत में प्राचीन काल में अच्छी तरह से जानी जाती थीं।

पानी की कठोरता का ज्ञान कई श्लोकों (7,19,21,24,29 और 43) में वर्णित किया गया है, जो मूल के अनुसार विभिन्न जल के गुणों को उद्धृत करते हैं:

धारनीरं त्रिदोषध्नमनिर्देश्यकरं लघु।
सौम्यं रसायनं बल्यं तर्पणं हलादि जीवनम।। **X.7** ।।

करकाजं जलं रूक्षं विशंद गुरू च स्थिरम्।
दारूणं शीतलं सान्द्रं पित्तहृत्कफवातकृत्।। **X.19** ।।

यहाँ, सौम्यम का अर्थ है मृदु और रूक्षं या दारुणम का अर्थ है कठोर पानी।

पानी के संबंध में रोगों का वर्णन किया गया है। यह श्लोक X.27-31, X.78- 81 और कुछ अन्य श्लोकों से स्पष्ट है। पानी की गुणवत्ता और संबंधित विषयों पर यह प्रवचन काफी वैज्ञानिक है और प्राचीन भारतीयों के व्यापक दृष्टिकोण को दर्शाता है।

जल उपचार

श्लोक 5 और 6, पानी को कपड़े से छानने के बाद सोने, चांदी, तांबे और कांच के बर्तन या मिट्टी के बर्तन में संग्रह का सुझाव देते हैं। इससे शुद्ध जल प्राप्त करने के लिए उनके द्वारा दिए ध्यान का पता चलता है।

सौवर्णे रजते ताम्रे स्फटिके काचनिर्मिते।
भाजने मृण्मये वापि स्थापितं धारगमूच्यते।। **X.6** ।।

श्लोक 82 में, हमें बताया गया है कि पीने के पानी का उपचार गर्म करके या उबाल कर और छान कर किया जाना चाहिए । श्लोक 83 में गर्म रेत, पत्थरों आदि की सहायता से और सुगंधित पदार्थों के साथ पानी के उपचार का पता चलता है। यथा:

निदितं चापि पानीयं क्वथितं सूर्यतापितम्।
सुवर्ण रजतं लोहं पाषाण सिकतामपि।। **X.82** ।।

भ्रशं सन्ताप्य निर्वाप्य सप्तधा सार्धितं तथा।
कर्पूरजाति पुन्नागपाटलादिसुवासितम्।। **X.83** ।।

शुचि सांन्द्रपटस्त्रवि क्षुत्रजन्तुविवर्जितम्।
स्वच्छं कनकमुक्ताघैः शुद्धं स्याददोषवर्जितम।। **X.84** ।।

पर्णमूल विसग्रंथिमुक्ताकनकशैवलैः।
गोमेदेन च वस्त्रेण कुर्यादबुप्रसादनम्।। **X.85** ।।

अर्थ: "दूषित पानी को उबालने से , सूर्यकी किरण के संपर्क में लाने से या गर्म सोने, चांदी, लोहा, पत्थर या रेत से बुझाकर शुद्ध किया जा सकता है और इसे कैम्फर, जैती (चमेली; जासमीनम ग्रैंडफ्लोरम), पुन्नागा (नागकेसर); कैलोफ्यल्लुम इनोफ्यल्लुम), पाताल (पधार; कोक्सलपिनिया बंडूकेल्ला) आदि से सुगंधित कर और फिर साफ कपड़े से छानकर छोटे कीटाणुओं से मुक्त पानी बनाया जाता है। इसे सोने, मोती आदि से शुद्ध करके भी प्रदूषणमुक्त किया जाता है । पानी को पत्तियों, जड़ों, कमल के पत्तों के डंठल, सोना, मोती, कपड़े आदि से मुक्त किया जाना चाहिए ।"

उपरोक्त उपचार प्रक्रिया से हमें पता चलता है कि तेज धूप, ताप, छानने , वातन और सुगन्धित घटकों के मिलाने के सकारात्मक प्रभावो का ग्रंथो में स्पष्ट रूप से वर्णन है। पानी के ठहराव, पत्तियों द्वारा पानी के दूषित होने, शैवाल आदि के बुरे प्रभावों का भी वर्णन किया गया है। दी गई उपचार विधियों में किसी महंगी वस्तु की आवश्यकता नहीं है और पानी के कोई वांछनीय गुण परिवर्तित नहीं होंगे, जो आधुनिक जल उपचार के रासायनिक तरीकों में एक कमी है।

अपशिष्ट प्रबंधन तकनीक

स्वच्छता की कमी मानव विकास को उसी या उससे भी अधिक हद तक प्रभावित करती है जितना की स्वच्छ जल की कमी । जबकि अपशिष्ट जल उपचार पर चर्चा करते समय एक कलंक जोड़ा जा सकता है, स्वच्छता को व्यापक रूप से वित्तीय और राजनीतिक संसाधनों के साथ-साथ, मानव जाति के विकास के एक महत्वपूर्ण दावे के रूप में माना जाता है । विक्टर ह्यूगो (1892) के अनुसार, 'पुरुषों का इतिहास सीवर का इतिहास परिलक्षित होता है' । यह कहावत स्वच्छता और अपशिष्ट प्रबंधन के महत्व के बारे में पर्याप्त रूप से इंगित करती है।

स्वच्छता शब्द का उपयोग मुख्य रूप से मानव मलमूत्र के साथ-साथ अन्य अपशिष्ट उत्पाद से सुरक्षित / सही तरके से निपटने और निपटान के लिए किया जाता है (अवन्नावर और मणि, 2008)। ये सब जानते हैं मनुष्यों, जल और स्वच्छता के बीच के संबंधों में, सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक कारकों का प्रभाव के कारण हमेशा से पर्याप्त परिवर्तन देखे गए हैं (सोरसिनेल्ली, 1998; वोल्फ, 1999; डी फियो और नेपोली, 2007; अवन्नावर और मणि, 2008; लोफ़रानो और ब्राउन, 2010)। हालांकि, सभी हमेशा से, अपशिष्ट जल को गंदगी माना गया है (मैनगेलियर, 1994; लोफ़रानो और ब्राउन, 2010)। हमेशा से अपशिष्ट जल प्रबंधन के विकास की प्रक्रिया की दुनिया भर में कई लेखकों द्वारा चर्चा की गई जैसे कि तार (1985), मैनगेलियर (1994), सोरसिनेल्ली (1998), वियाल (2000), सोरी (2001) और नेरी सर्नेरी (2007)। अभी हाल ही में, लोफ़रानो और ब्राउन (2010) ने मानव जाति के इतिहास में अपशिष्ट जल प्रबंधन की गहन समीक्षा प्रस्तुत की है। इस समीक्षा कार्य में उन्होंने स्पष्ट रूप से दुनिया की विभिन्न सभ्यताओं में, प्राचीन सिंधु सभ्यता सहित, स्वच्छता के विकास के बारे में चर्चा की है ।

सिंधु सभ्यता की नई ऊंचाइयों के बारे में केनॉय (1997) का उल्लेख करना उचित होगा, कि सिंधु शहरों में सबसे पहले विकसित की गई कई प्रौद्योगिकियों ने दक्षिण एशिया और दुनिया के अन्य पुराने क्षेत्रों में बाद में उपयोग की जाने वाली तकनीकों के लिए नींव प्रदान

की। अपशिष्ट जल प्रबंधन और स्वच्छता हड़प्पा सभ्यता के पहले शहरी स्थलों की प्रमुख विशेषताएं थीं (केनोयर, 1991)। इसके अतिरिक्त, लोफ़रानो और ब्राउन (2010) को रिकॉर्ड मिले हैं कि 'प्राचीन काल में, सिंधु सभ्यता सबसे पहले उचित अपशिष्ट उपचार प्रणाली थी' । सीवेज और जल निकासी जटिल नेटवर्क से बनी थी, विशेष रूप से मोहनजो- दाड़ो और हड़प्पा के अंदर। शोचालय, सोखने वाले गड्ढे, हौदी, पाइप और चैनल अपशिष्ट निपटान के मुख्य तत्व थे । चित्र 7.1 सिंधु घाटी सभ्यता के दो शहरो मोहनजो-दाड़ो और लोथल की जल निकासी और सफाई व्यवस्था को दर्शाया गया है ।

चित्र 7.1 :सिंधु घाटी सभ्यता के शहरों मोहनजो-दाड़ो और लोथल की जल निकासी और सफाई व्यवस्था (खान ,2011: केनोयर, 1998 के बाद)

घरों को जल निकासी चैनलों से जोड़ा गया था और अपशिष्ट जल को बिना किसी उपचार के सीधे सड़क के सीवर में डालने की अनुमति नहीं थी । सबसे पहले, अपशिष्ट जल को टेरा-कोटा के पतले पाइप के माध्यम से एक छोटी हौदी में डाला जाता था । ठोस पदार्थ स्थिर होकर हौदी में जमा हो जाते थे, तब हौदी 75% भरी होती थी, तरल पदार्थ सड़क पर जल निकासी चैनलों में बह गए जाते थे (लोफ़रानो और ब्राउन, 2010)। जल निकासी चैनलों को ईंटों और कटे पत्थरो द्वारा ढाका जा सकता था, जो शायद रखरखाव और सफाई गतिविधियों के दौरान हटा दिए जाते थे (वोल्फ, 1999) । इसके अलावा, कई नालियों के संधि-स्थल पर या जहां लंबी दूरी के लिए नाले को बढ़ाया गया था, वहां कूड़े के गड्ढे बनाये गए थे ताकि जल निकासी प्रणालियों को अवरुद्ध होने से बचाया जा सके (राइट, 2010) । फ़ार्दिन और अन्य (2013) ने पाया है कि मोहनजो-दारो लगभग सभी बस्तियाँ निकासी नेटवर्क से जुड़ी हुई थीं ।

जोरवे में, वर्तमान महाराष्ट्र में, यह प्रदर्शित किया गया है कि जल निकासी प्रणाली 1375-1050 ईसा पूर्व तक प्रयोग में थी (किर्क, 1975; फार्डिन इत्यादि, 2013) । बाद में (लगभग 500 ईसा पूर्व) में उज्जैन की जल निकासी प्रणाली में मिट्टी के बर्तनों से बने सोखने वाले गड्ढे या छेद वाले बर्तन शामिल थे (किर्क, 1975), और यह माना गया है कि अपशिष्ट जल के निपटान के लिए भंवर वाले कुओं का उपयोग किया गया था (मेट, 1969) । तक्षशिला में तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में, घरेलू अपशिष्ट जल को मिट्टी के ड्रेन पाइपो द्वारा घरों से बाहर निकाल कर सोखने वाले गड्ढों में डालते थे (सिंह, 2008)। पहली शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान, भारत के दक्षिणी भाग के अरीकेमेडु में सीवेज निपटान के लिए नालियों का उपयोग जाता था (कासल, 1949)। इसके अलावा, 150 ईसवी के आसपास अपवाहित नालियों के उपयोग से अपशिष्ट जल प्रणालियों में सुधार किया गया। (बेगली 1983)। भारद्वाज (1997) ने पाया कि यह प्रणाली उन क्षेत्रों से पानी की निकासी कर रही थी, जो कपड़ा और रंगाई उद्योग वाले बेसिन का हिस्सा माना जाता था । शेष प्राचीन भारत की तुलना में यह इस प्रणाली से जुड़ी अनूठी विशेषता थी, जहां अपशिष्ट जल निपटान केवल घरेलू अपशिष्ट प्रवाह के लिए लागू किया गया था ।

उपसंहार

उपरोक्त चर्चाओं से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीन काल के दौरान, पानी की गुणवत्ता, स्वच्छता और अपशिष्ट जल प्रबंधन प्रौद्योगिकी की आधुनिक अवधारणाएं बहुत अच्छी तरह से ज्ञात थी और सिंधु घाटी सभ्यता और उसके बाद के समय में अपने उन्नत चरणों में थी । जल वर्गीकरण और पर्यावरण के संबंध में इसकी गुणवत्ता को देखना पारिस्थितिकी की आधुनिक अवधारणा को संतुष्ट करता है । जल गुणवत्ता मानकों, पानी की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारक, क्षय सामग्री का पानी की गुणवत्ता पर प्रभाव, स्थिर

और गहरे जल निकायों में वातन की कमी आदि आधुनिक विज्ञान के अनुसार ज्ञात थे । जल उपचार विधियों हेतु छानने का उपयोग करना, विभिन्न सामग्रियों जैसे मिट्टी, चांदी, सोना आदि के बर्तन, गर्म पत्थरों से बुझाना, धूप ताप, वातन, सुगन्धित यौगिकों को जोड़ना आदि को अपनाया गया था । ये तरीके हैं आज भी इस्तेमाल किये जाते हैं और रासायनिक कीटाणुनाशक दवाओं की तुलना में बेहतर हैं क्योंकि इनसे पानी के वांछनीय गुणों और गंधों में परिवर्तन नहीं हटा है । अपशिष्ट निपटान के आधुनिक तरीके जो केंद्रीकृत और विकेंद्रीकृत अवधारणा के साथ-साथ अपशिष्ट जल के तरीकों पर आधारित है, सिंधु घाटी सभ्यता के दौरान शेष विश्व के समकालीनों में इस्तेमाल किए गए तरीको तुलना में बेहतर थे ।

अध्याय-8

जल संसाधन उपयोग, संरक्षण और प्रबंधन

दुनिया के कई अन्य हिस्सों की तरह, भारत में भी सभ्यता नदियों और डेल्टाओं के आसपास विकसित हुई, और नदियाँ राष्ट्रीय संस्कृति का एक स्थायी प्रतीक बनी हुई हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि सिंधु घाटी सभ्यता, जो सबसे प्राचीन सभ्यताओं में से एक थी, दुनिया की सबसे विस्तृत सभ्यता थी जिसमें सार्वजनिक और निजी स्नान गृह के साथ संबद्ध एवं पूर्णरूप से योजनाबद्ध शहर थे, ठीक से रखी ईंटों के साथ निर्मित भूमिगत नालियों के माध्यम से सीवरेज प्रणाली, और कई जलाशयों और कुओं के साथ एक कुशल जल प्रबंधन प्रणाली थी । सिंचाई के लिए नहरों के व्यापक नेटवर्क के साथ कृषि की जाती थी। का व्यापक स्तर पर उस समय पूरे क्षेत्र में सिंचाई प्रणाली, विभिन्न प्रकार के कुएँ, जल भंडारण प्रणालियाँ और कम लागत और टिकाऊ जल संचयन वाली तकनीक विकसित की गई थी (नायर, 2004)। ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से उस समय की जीवन शैली, सामाजिक संरचना, कृषि और समाज द्वारा उगाई गई फसलों के बारे में उल्लेख है। सिंचाई चैनल और कच्चे एवं पक्के कुओं का उल्लेख विभिन्न स्त्रोत (ऋग्वेद 19.4.2/आर एक्स 2.9.4) (बागची और बागची, 1991) में नालीदार भी किया गया है। जैन और बौद्ध धर्म के दौरान कृषि और पशुधन पालन की प्रमुख भूमिका थी एवं चैनल सिंचाई प्रचलित थी (बागची और बागची, 1991)। मैकलीन III और डॉर्न (2006) कहते हैं कि 'मौर्य साम्राज्य पहली एवं एक महान हाइड्रोलिक सभ्यता थी'। यह उस दौरान समाज के कल्याण के लिए जल संसाधनों के कुशल उपयोग और उनके संरक्षण के बारे में ज्ञान की स्तर को दर्शाता है।

मौर्य काल के दौरान, देश के विभिन्न हिस्सों में वर्षा की क्षेत्रीय जानकारी रखने के लिए वर्षा मापक स्थापित किए गए थे और प्राप्त की गई जानकारी के आधार पर, 'कृषि अधीक्षक' द्वारा देश के विभिन्न हिस्सों में बीज बोने के निर्देश दिए जाते थे (श्रीनिवासन, 1975)|पुरातन काल से ही विकास के लिए पानी के महत्व का समझते हुए , लगभग सभी प्राचीन सभ्यताएँ जल संसाधनों के क्षेत्रों तक ही सीमित थीं। ऋग्वेद के समय में, हमें कृषि, घरेलू और अन्य उद्देश्यों के लिए नदियों, कुओं, तालाबों आदि के माध्यम से पानी के उपयोग के कई संदर्भ मिलते हैं। श्लोक,1, 121.8 में ऋग्वेद के समान ही तथ्य का पता चलता है:

अष्टा महोदिव आदो हरी इह घुम्नासाहमभि योधान उत्सम्।
हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन्वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम्।। आर.वी.I,121.8

इसी प्रकार पद (I, 23.18 और V, 32.2) कहता है कि कुओं, तालाबों आदि के पानी का उपयोग समझदारी और कुशलता से करके कृषि को आगे बढ़ाया जा सकता है। ऋग्वेद के श्लोक (VIII, 3.10) में रेगिस्तानी इलाकों को भी सिंचित करने के लिए कृत्रिम नहरों के निर्माण के बारे में कहा गया है, जो कि केवल कुशल व्यक्तियों (रिभस / इंजीनियर) के प्रयासों से संभव है:

येना समुद्रमसृजो महीरयस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सघः सो अस्य महिमा न सन्नशे यं क्षोणरिनुचक्रदे। आर.वी.VIII,3.10 ।।

उतनों दित्या इष उत सिन्धुरहर्विदा।
अप द्वारे व वर्षथः।। आर.वी.VIII,5.21 ।।

पद (VIII, 49.6; X64.9) सिंचाई के लिए पानी के महत्व का गुणगान करते हैं। पृथ्वी पर कुओं, नदियों, वर्षा और किसी भी अन्य स्रोत से प्राप्त जल का उपयोग बुद्धिमानी से किया जाना चाहिए क्योंकि जल सभी के कल्याण के लिए प्रकृति का उपहार है।

उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः।। VIII,49.6 ।।

सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिमिर्म हो महीरवसा यन्तु वक्ष्णीः।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत।। X.,64.9 ।।

ऋग्वेद के समान, यजुर्वेद भी जनमानस को कुओं, तालाबों, बांधों के माध्यम से वर्षा और नदी के जल का उपयोग करने के लिए और कृषि और अन्य प्रयोजनों के लिए पानी की आवश्यकता वाले विभिन्न स्थानों पर वितरित करने का निर्देश देता है|

नमः स्त्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च।
नमः कुल्याय च ररस्याय च नमो नदेयाय च वैशन्ताय च।। वाई.वी.,16.37 ।।

अथर्ववेद में, हमारे पास उपलब्ध जल संसाधनों और जल संरक्षण के कुशल उपयोग के माध्यम से सूखा प्रबंधन के संदर्भ हैं। नदी, कुएं आदि का जल , अगर कुशलता से इस्तेमाल किया जाए, तो सूखे की तीव्रता कम हो जाएगी।

आपो यद् वस्तपस्तेन तं प्रति तपत यो स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।। ए.वी.II,23.1

अथर्ववेद के छठे, 100.2 और सातवें, 11.1 बताते हैं कि विद्वान लोग कुएं, तालाब, नहरों आदि के माध्यम से रेगिस्तानी इलाकों में जल लाते हैं (VI, 100.2)। इस बात पर भी

बल दिया गया कि आदमी को सूखे, बाढ़ और प्राकृतिक आपदाओं के बारे में पहले से सोचना चाहिए और उसके अनुसार निवारक उपाय करना चाहिए:

यद् वो देवा अपजीका आसिंज्वन धन्वन्युदकम्।
तेन देव प्रसूतेनदं दूंषयता विषम्।। ए.वी.VI,100.2 ।।

अथर्ववेद के श्लोक XII, में बताया गया है कि जो लोग नौपरिवहन , मनोरंजन, कृषि आदि के प्रयोजनों के लिए नदी, कुएं, नहरों आदि के माध्यम से वर्षा जल का बुद्धिमानी से उपयोग करते हैं, वे हर समय समृद्ध होते हैं:

यस्था समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामत्न कृष्टयः संवभूवुः
यस्यामिदं जिन्वति प्राषदेजत सा नो भूमिः पूर्व पेयें दधातु।। ए.वी.XII,1.31।।

शंत आपो हेमवतीः शमु ते सन्तु वर्ष्याः।
शं ते सनिष्पक्ष आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः।। ए.वी.19.2.1 ।।

तात्पर्य: " व्यक्ति को पीने, कृषि, उद्योगों आदि में उपयोग के लिए पहाड़ों, कुओं, नदियों और वर्षा जल से पानी के संरक्षण के लिए उचित प्रबंधकीय कार्रवाई करनी चाहिए"| इसी प्रकार, अथर्ववेद (XX, 77.8) का एक श्लोक राजा को निर्देश देता है कि वे कृषि, उद्योग आदि हेतु जल उपलब्ध कराने के लिए एवं दो क्षेत्रों के बीच नौपरिवहन की सुविधा प्रदान करने के लिए पहाड़ों पर उपयुक्त नहरों का निर्माण करें।

आपो यदद्रि पुरूहूत दर्दराविर्भुव्त सरमा पूर्त्य ते।
स ना नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोमा रूजन्नग्डिरोभिर्गृणान।। ए.वी.XX,77.8।।

जल संसाधन प्रबंधन

भारत में भूमि और पानी के संरक्षण की एक आकर्षक और महत्वपूर्ण प्राचीन परंपरा है और आज भी स्थानीय लोग कई ऐसे पारंपरिक संरक्षण प्रथाओं का पालन करते हैं। जिस की इस अध्याय के आरम्भ में चर्चा की गई है कि कृषि की आवश्यकता के अतरिक्त भी प्राचीन भारत में जल प्रबंधन के विज्ञान को काफी महत्व दिया गया था। मौर्य युग के दौरान, मगध क्षेत्र में आहाड़ और पाइन बाढ़ के जल हेतु संग्रहण तंत्र थे। आहाड़ तीन तरफ तटबंधों वाले जलाशय थे, जो जल निकासी लाइनों जैसे कि छोटी नाली या कृत्रिम पाइनस के अंत में निर्मित होते थे । सिंचाई के उद्देश्य और अहारों में पानी की आवक के लिए पाइन एक प्रकार के डायवर्जन चैनल थे जो नदी से दूर होते थे। प्रतिनिधित्व के रूप में, आहाड़ पाइन प्रणाली को चित्र 8.1 में दिखाया गया है।

8.1 दक्षिण बिहार के गया क्षेत्र में आहाड़ पाइन प्रणाली

(Image courtesy: Hindi Water Portal;https://www.thebetterindia.com/6963/tbi-videos-magadh-jal-jamaat-helps-revive-2000-year-old-flood-water-harvesting-systems-in-gaya-bihar/)

वर्षा की अधिकता या कमी का प्रबंधन करने के लिए कृषि नियोजन सामान्य था। यह अर्थशास्त्र में बहुत अच्छी तरह से वर्णित है: "वर्षा के अनुसार (कम या ज्यादा) कृषि अधीक्षक को उन बीजों को बोना चाहिए जिन्हें या तो अधिक या कम जल की आवश्यकता होती है"। कौटिल्य का कहना है कि "राजा को जल से भरे बांध, जलाशय आदि का निर्माण या तो बारहमासी स्रोत से करना चाहिए या किसी अन्य स्रोत से खींचना चाहिए या अर्थशास्त्र (अर्थशास्त्र, समशास्त्री द्वारा अनुवादित पुस्तक भाग 2 , अध्याय 1 पृष्ट 46) के अनुसार उन्हें स्वयं के जलाशयों का निर्माण करने वालों को स्थल , सड़क, लकड़ी और अन्य आवश्यक चीजें प्रदान कर सकते हैं|वह आगे कहता है कि राजा जलाशयों या झीलों (सेतुष्) में मछली पकड़ने, नौका चलाने और व्यापार करने के संबंध में अपने सही स्वामित्व (स्वाम्यम) का प्रयोग करेगा|

इस अवधि के दौरान, जल धारण क्षमता को बढ़ाने के लिए खेतों के आसपास तटबंधों का निर्माण किया गया था। उचित विनियमन सुविधाओं के साथ नदी के जल का उपयोग करने

के लिए स्लूस गेट के साथ सामरिक बिंदुओं पर बांधों का निर्माण किया गया था। सिंचाई (बागची और बागचीनी, 1991) में बेहतर दक्षता प्राप्त करने के लिए उस समय कंडेंट्स का भी निर्माण किया गया था। चित्र 8.2 चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल के दौरान निर्मित जूनागढ़ की सुदर्शना झील को दर्शाता है जिसे प्रांतीय गवर्नर, वैश्य पुष्यगुप्त द्वारा निर्मित किया गया था और बाद में अशोक के शासनकाल के दौरान प्रांतीय गवर्नर, यवना राजा तुसस्पा (शॉ और सुक्लिफ, 2010, किल्हॉर्न 1905-6, पृष्ट 41) द्वारा संशोधित किया गया ।

चित्र 8.2: सुदर्शना झील गिरनार, जूनागढ़, गुजरात का दृश्य
(स्रोत: https://junagadh.gujarat.gov.in/photo-gallery)

हाल ही में, शटक्लिफ और शॉ (2011) ने मध्य प्रदेश में बेतवा नदी उप-बेसिन (गंगा बेसिन में यमुना की एक सहायक नदी) में सांची साइट (एक प्रसिद्ध बौद्ध स्थल एवं यूनेस्को की एक विश्व विरासत स्थल) पर अनुसंधान किया। उन्हें स्पिलवेज से लैस कई बांध मिले| उन्होंने पाया कि ये बांध पानी के संतुलन के सिद्धांतों के एक ध्वनि ज्ञान के आधार पर बनाए गए होंगे। जलाशयों के डिजाइन के अलावा, बड़े बांधों में से कम से कम दो पर स्पिलवेज की उपस्थिति, जो लगभग 50 वर्षों की बाढ़ वापसी अवधि के लिए बनाए गए थे यह दर्शाता है कि बाढ़ से बचाव का भी ध्यान दिया गया था| कौटिल्य का अर्थशास्त्र हमें उन बाँधों और बाँधों का भी विस्तृत विवरण देता है जो मौर्य साम्राज्य के काल में सिंचाई के लिए बनाए गए थे। पानी की

आपूर्ति प्रणालियों को सख्त नियमों और विनियमों के ढांचे के भीतर अच्छी तरह से प्रबंधित किया गया था। विशेष रूप से, एक संगठित जल मूल्य निर्धारण प्रणाली, जो जल प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, को भी इस अवधि के दौरान विकसित किया गया था, जैसा कि अर्थशास्त्र की निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा स्पष्ट किया गया था: "जो लोग हाथ से श्रम करके (कंधों पर पानी ढो कर) सिंचाई करते हैं, वे उपज का 1/5 हिस्सा पानी का मूल्य देंगे जो लोग बैलगाड़ियों द्वारा जल ढोते हैं वे उपज का 1/4 वाँ हिस्सा देंगे जो लोग नदियों, झीलों, टैंकों और कुओं से लेकर जल का प्रयोग करते हैं वो उपज का तीसरा या चौथा हिस्सा जल कर के रूप में देंगे 4 वाँ हिस्सा (अर्थशास्त्र, समशास्त्री द्वारा अनुवादित पुस्तक भाग 2 , अध्याय 14 पृष्ट 131) XXIV पृष्ठ 131) "।

वृहत संहिता में, हमें तालाबों के अभिविन्यास के बारे में कुछ संदर्भ मिलते हैं ताकि जल को कुशलतापूर्वक संग्रहित और संरक्षित किया जा सके, जलाशय की रक्षा के लिए वृक्षारोपण के प्रकार और जलाशय को किसी भी संभावित नुकसान से बचाने के लिए निम्न प्रकार हैं:

पाली प्रागपारायताम्बु सुचिरं धत्ते न याम्योत्तरा
कल्लोलैखदारमेति मरूता सा प्रायशः प्रेरितैः।
तां चेदिच्छति सारदारूभिरपां सम्पातमावारयेत
पाषाणदिभरेव वा प्रतिचयं क्षुण्णं द्विपाश्वादिभिः।। वृ.सं.. 54.118 ।।

तात्पर्य: पूर्व से पश्चिम की ओर स्थित एक तालाब में लंबे समय तक पानी रहता है, जबकि उत्तर से दक्षिण की ओर स्थित तालाब हवाओं द्वारा उठाई गई लहरों द्वारा खराब हो जाता है। इसे स्थिर करने के लिए, दीवारों को लकड़ी के साथ या पत्थर के साथ या इसी तरह और आस-पास की मिट्टी को हाथियों, घोड़ों आदि की स्टैम्पिंग और ट्रिमिंग से मजबूत करना पड़ता है।

ककुभवटाम्रप्लक्ष्कदम्बैः सनिचुलजम्बूवेतसनीपैः।
कुरबकतालाशोकमधूकैर्बकुलविमिश्रैश्चावृततीराम।। वृ.सं.54.119 ।।

तात्पर्य: नदी तटों को काकुभा वात, अमरा, प्लास, कदंब, निकुला, जम्बू, वेतसा, निपा, कुरावका, ताला, अशोका, मधुका और बकुला आदि पेड़ों से आच्छादित करना चाहिए।

अगला पद (पद .S.54.120) , यह स्पिलवे के निर्माण का निर्देशन करता है:

द्वारं च नैर्वाहिकमेकदेशे कार्य शिलासिज्चतवारिमार्गम्।
कोशास्थितं निर्विवरं कपाटं कृत्वा ततः पांशुभिरावपेत्तम्।। वृ.सं.54.120 ।।

तात्पर्य: पानी की निकासी के लिए पत्थरों से एक मार्ग एक तरफ बनाया जाना चाहिए। एपर्चर के बिना एक पैनल को एक फ्रेम में बद्ध किया जाता है, जो मिट्टी और चिकनी मिट्टी के साथ भूमि के साथ जकड़ा हुआ होता है।

इस लेख से, हम महसूस कर सकते हैं कि प्राचीन भारत में जल प्रबंधन को उचित महत्व मिल रहा था और यहाँ तक कि तटों के संरक्षण, स्पिलवे इत्यादि और अन्य छोटे पहलुओं पर भी ध्यान दिया गया था।

प्राचीन भारत में कृत्रिम टैंकों के उचित स्थान पर भी ध्यान दिया जाता था। विभिन्न तकनीकों को लागू किया गया था और समान रूप से विभिन्न सामग्रियों का उपयोग कार्यों के निर्माण के लिए किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि जल विज्ञान पर ग्रंथ के लिए विशेष कार्य दक्षिण भारत में अस्तित्व में रहे होंगे। वर्ष 1369 ई० के भास्करा भवदुरा के पोरूमिला टैंक के शिलालेख दक्षिण भारत में टैंक और बांधों के निर्माण की विस्तृत विधि पर प्रकाश डालता है।

प्राचीन साहित्य में एक अच्छी टंकी का निर्माण अच्छी तरह से वर्णित है। शास्त्र (एपीग्राफिया इंडिका, वॉल्यूम, पीपी। 108, हेमाद्रि से उद्धरण, 37-38, श्रीनिवासन टी.एम., 1970) के अनुसार, एक अच्छे टैंक के निम्नलिखित 12 आवश्यकताएं हैं: (i) एक राजा नीतिपरायणता के साथ संपन्न, अमीर, खुश और स्थायी धन और प्रसिद्धि की इच्छा रखने वाला होना चाहिए; (ii) ब्रह्मण ने जल विज्ञान (पथस-शास्त्र) सीखा होना चाहिए ; (iii) कठोर मिट्टी से सजी जमीन होनी चाहिए; (iv) स्रोत से तीन योजन दूरी पर बहने वाली नदी मीठे पानी की होनी चाहिए। (v) पहाड़ी, जिसके कुछ हिस्से टैंक के संपर्क में होने चाहिए हैं। (vi) (पहाड़ी के इन भागों के बीच में) एक कठोर-पत्थर की दीवार का एक बांध (निर्मित), बहुत लंबा नहीं, लेकिन दृढ़ होना चाहिए; (vii) बाहर से फल (देने) भूमि (फल-स्थिरा) की ओर इशारा करते हुए दो चरम (श्रीमगा) होने चाहिए? (viii) तल, व्यापक और गहरा होना चाहिए; (ix) सीधी और लंबी पत्थरों वाली एक खदान होनी चाहिए; (x) फल और स्तर में समृद्ध पड़ोसी क्षेत्र होना चाहिए; (xi) एक पानी का रास्ता (यानी, स्लुइस) जिसमें पहाड़ के हिस्से (आद्रि स्थान) के मजबूत किनारे होना चाहिए; और (xii) (बांध निर्माण की कला में कुशल) पुरुषों का एक दल होना चाहिए।

इन 12 अनिवार्यताओं के साथ, एक उत्कृष्ट टैंक इस पृथ्वी पर आसानी से बनाया जा सकता हैं।

बांधों और जलाशयों के निर्माण के संबंध में जल प्रबंधन के आधुनिक, विज्ञान के साथ तुलना पर इन बिंदुओं से, हम पाएंगे कि जहां तक सामान्य आवश्यकताओं का संबंध है उन दिनों तकनीक केवल आधुनिक परिष्कृत इंजीनियरिंग के लिए तुलनीय थी। इन 12 अनिवार्यताओं के साथ, छह दोषों को भी मान्यता दी गई जो जलाशय की उपयोगिता को कम कर देंगे और जल संरक्षण मुश्किल हो जाएगा। ये दोष (दोसा) (एपिग्राफिया इंडिका, वॉल्यूम। XIV, PP.108, हेमाद्रि से उद्धरण, श्लोक 39, श्रीनिवासन टी एम 1970) के माध्यम से निम्नानुसार हैं:

(i) बांध से पानी का निकलना
(ii) लवणीय मिट्टी
(iii) दो राज्यों की सीमा पर स्थिति टैंक
(iv) मध्य (टैंक के) में ऊँचाई (कुर्मा)
(v) पानी की व्यापक आपूर्ति का अभाव और संचित भूमि का व्यापक विस्तार
(vi) अपर्याप्त मैदान और पानी की अधिकता

उपसंहार

उपरोक्त चर्चा से पता चलता है कि कुओं, तालाबों, टैंकों और नहरों के माध्यम से पानी का उपयोग प्राचीन काल में प्रचलित था, साथ ही रेगिस्तानों में भी पानी की आपूर्ति के प्रयास भी किए गए थे। संगठित जल मूल्य निर्धारण प्रणाली प्रचलित थी और बाढ़, सूखा आदि प्राकृतिक आपदाओं के निवारक उपाय उपलब्ध थे। बांध और तालाबों की निर्माण विधियां और सामग्री, आवश्यक स्थल और अच्छी टंकियों की अन्य आवश्यकताएं, नदी तटबंध सुरक्षा, स्पिलवेज आदि पर पर्याप्त ध्यान दिया गया था । टैंकों के समुचित स्थान और अभिविन्यास, नदीतटबंध के अस्तर, वाष्पीकरण नियंत्रण, सूखा प्रबंधन आदि के क्षेत्रों में उच्च स्तर का विकास प्राप्त किया गया था । इस प्रकार, प्राचीन भारत सिंचाई और जल संरक्षण में इंजीनियरिंग के क्षेत्र में विकास के उच्च स्तर पर था। लोगों के लिए बेहतर पेयजल आपूर्ति के अलावा कृषि उपज बढ़ाने के लिए भारत में प्राचीन समय के दौरान अत्याधुनिक सिंचाई सुविधाओं की स्थापना की गई थी। प्राचीन भारत जल प्रबंधन के क्षेत्र में अत्यधिक प्रगतिशील था। प्राचीन काल के वैज्ञानिक उपकरणों की अनुपस्थिति में इस तरह का उल्लेखनीय विकास पाठकों के आश्चर्य और प्रशंसा के भाव भर देता है।

अध्याय-9
समापन टिप्पणी

सभी जीवों के जीवित रहने के लिए जल सबसे कीमती और महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। यह इतनी मजबूती से हमारे अस्तित्व और सामाजिक और सांस्कृतिक विकास से जुड़ा हुआ है कि यह समृद्ध प्रतीकवाद, परंपराओं, अनुष्ठानों और धार्मिक विश्वासों का स्रोत बन गया है। दुनिया की महान सभ्यताओं के लोगों के जीवन और जीवन स्तर को आकार देने में जलकी एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पूरे इतिहास में, जल से हमारे संबंध कितने महत्वपूर्ण हैं इसका भौतिक प्रशंसा पत्र यह है कि हमने जलका उपयोग, प्रबंधन कैसे किया है और यह हमारे लिए कितना मूल्यवान है । प्रवाह को नियंत्रित करने का पहला सफल प्रयास मुख्य रूप से कृषि की जरूरतों से प्रेरित सिंचाई प्रयोजनों के लिए था। जलविज्ञानीय चक्र, सतही जल, भूजल और वर्षा जल की प्रकृति की अधिक विस्तृत समझ के साथ; सहस्त्रों वर्षों से सभी सभ्यताओं में मजबूत और स्थायी जल प्रबंधन प्रणाली भी विकसित की गई थी।

आध्यात्मिक विकास के अतिरिक्त, प्राचीन भारत ने विज्ञान के विकास को भी प्रदर्शित किया है । विश्व की सबसे बड़ी व विश्व की सबसे प्रारंभिक व विकसित सभ्यताओं में से एक सिंधु घाटी है जो कि इतिहासोन्मुख भारतीय उप महाद्वीप में विज्ञान और समाज के विकास के स्तर को दर्शाती है। जैसा कि जेन्सन (1989) ने सही ढंग से पाया कि सिंधु लोग जलके साथ अपने जुनून के लिए जाने जाते थे। उन्होंने प्रतिदिन नदियों की प्रार्थना की और उन्हें एक दिव्य दर्जा दिया। वेदों के समय से लेकर प्राचीन भारतीय साहित्य विज्ञान में इस विकास का उल्लेख है (जल विज्ञान सहित)। वैदिक साहित्य, अर्थशास्त्र, पुराणिक स्रोत, वृहत्संहिता, मयूराचरित्रका , मेघमाला, जैन, बौद्ध और अन्य प्राचीन साहित्य प्राचीन भारत में जल विज्ञान और जल संसाधनों के ज्ञान की स्थिति का वर्णन करते हैं और उनमे अनेको संदर्भ मौजूद हैं ।

जैसे - जैसे हम भारतीय पौराणिक कथाओं में जल विज्ञान संबंधी संदर्भों की विस्तार से पड़ताल करते हैं, जिसमें मानव जाति के प्रारंभिक वैज्ञानिक प्रयासों के कई आकर्षक आयाम उभरते हैं। सौभाग्य से उनमें प्राचीन भारतीयों के कार्यों को अच्छी तरह से प्रलेखित किया गया है और मानव इतिहास को सामान्य रूप से, और विशेष रूप से भारत में जल विज्ञान के विकास के संकेत प्रदान करते हैं । प्राचीन भारत में जलसे संबंधित विज्ञान के विकास के अनुसंधान कार्यों को बड़ी संख्या में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा भी प्रकाशित किया गया है। इस पुस्तक को प्रकाशित करते समय बड़ी संख्या में आधुनिक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रों और विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों द्वारा प्रकाशित तकनीकी पुस्तको को इसमें

सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है । अवधारणाओं को स्पष्ट और घटनाओं की स्पष्ट मानसिक छवि बनाने में मदद करने के लिए, विभिन्न अवधारणाओं को दर्शाने वाले आंकड़े, जल विज्ञान प्रक्रियाओं और जल अभियांत्रिकी तकनीकों को भी शामिल किया गया है ।

जल विज्ञान प्रक्रियाओं के कई पहलुओं और जल संसाधन विकास और प्रबंधन प्रथाओं पर जैसा कि हम वर्तमान में उन्हें समझते हैं, वैदिक साहित्य और अन्य प्राचीन भारतीय साहित्य में उक्त विषय पर उससे विस्तृत चर्चा की गयी है। यह उचित समय है कि हम महसूस करें और जल संसाधनों के उपयोग और प्रबंधन की हमारी वर्तमान प्रणालियों पर सवाल उठाएं और हमारे पारंपरिक ज्ञान और व्यवहार को स्वीकार करें और उन्हें आधुनिक संदर्भ में लागू करें। इसलिए, आधुनिक समय की और प्राचीन काल की जल-प्रौद्योगिकियों की एक तुलना की आवश्यकता है। हालांकि कुछ हद तक, वर्तमान में उपयोग में लाने वाले उपकरणों तकनीकों और अनुप्रयोगों के पैमाने में अंतर है, तब भी मूल सिद्धांतों में कोई अंतर नहीं हैं। यहां तक कि जीवनशैली से संबंधित सभ्यता के स्वच्छता मानकों का विकास हाल ही में नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए, वर्तमान में प्रयुक्त सीटों से सुसज्जित और सीवरों से जलनिकलने वाली शौचालय मौजूद हैं प्राचीन काल के दौरान भी अस्तित्व में थे ।

अंत में, जल विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हमारे अपार पारंपरिक ज्ञान के मद्देनजर, यह महत्वपूर्ण और उपयोगी है कि जल और मानव के बीच के संबंध का अध्ययन प्रचीन काल की भांति विस्तार के साथ किया जाए।

ग्रंथ सूची

ए : प्राथमिक स्रोत:

1. ऋग्वेद संहिता (3000 ई.पू.), (i) महर्षि दयानंद सरस्वती (हिंदी) द्वारा भास्य, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली-5 द्वारा प्रकाशित।

(ii) स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती (अंग्रेजी) द्वारा भास्य, वेद प्रतिष्ठान, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित।

2. साम वेद (3000 ई.पू.) स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा भाष्य, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली-5 द्वारा प्रकाशित ।

3. यजुर्वेद (ऋग्वेद क बाद), स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा भास्य, (हिंदी) दयानंद संस्थान, नई दिल्ली -5

4. यजुर्वेउ (तैत्तिरिया संहिता) (ऋग्वेद के बाद) पं. श्रीपाद दामोदर सतवलेकर द्वारा संपादित । स्वयध्य मंडल, मराडी, जिला बालसोड़, गुजरात ।

5. श्वेत यजुर्वेद (वाजसनेय संहिता) (ऋग्वेद के बाद) आर.टी.एच. ग्रिफिथ द्वारा अंग्रेजी में अनूदित, मुंशीराम मनोहर लाल प्रकाशक, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली, 1987.

6. अथर्ववेद (नवीनतम वेद), पं. खेम करण दास त्रिवेदी द्वारा भाष्य, सर्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, महर्षि दयानंद भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली।

7. शतपथ ब्राह्मण (2000 ई.पू.), पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय द्वारा संपादित, प्राचीन संस्कृत अनुसंधान अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली -8

8. गोपथ ब्राह्मण (1000 ई.पू. के पश्चात), पं. खेम करण दास त्रिवेदी द्वारा भाष्य, डॉ. प्रजना देवी और मेधा देवी, द्वारा संपादित, अथर्ववेद कार्यालय, 34, लुकरगंज, इलाहाबाद, 1977 द्वारा प्रकाशित ।

महाकाव्य:

9. वाल्मीकि रामायण (800 ई.पू. से 200 ई.पू.), गीता प्रेस, गोरखपुर, दो खंडों में हिंदी अनुवाद सहित।

10. महाभारत (400 ई.पू. से 400 ईस्वी) पं. रामनारायण दत्त शास्त्री, पांडेय राम द्वारा छः खंडों में अनूदित, गीता प्रेस गोरखपुर।

स्मृति:

11. मनुस्मृति (200 ईसा पूर्व या उससे पहले), पं. हरगोविंद शास्त्री द्वारा संपादित, चौखम्बा संस्कृत श्रृंखला कार्यालय, वाराणसी -221 001, 1984.

दर्शन प्रणाली:

12. कणाद की वैश्विका सूत्र (पूर्व-बौद्ध, 600-700 ई.पू.) ए.ई. गफ द्वारा अनूदित, ओरिएंटेड बुक्स रीप्रिंट कॉर्पोरेशन, 54, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली -110 055, 1975

व्याकरण:

13. पाणिनी की अष्टाध्यायी (700 ई.पू.), ब्रह्मदत्त जिज्ञासु द्वारा भाष्य, रामलाल कपूर ट्रस्ट, नाहलगढ़, सोनीपत, हरियाणा द्वारा दो खंडों में प्रकाशित 1985 .

राज्य व्यवस्था

14. अर्थशास्त्र (कौटिल्य, 400 ई.पू.), आर. शमाशास्त्री, द्वारा अंग्रेजी में अनूदित , मैसूर मुद्रण और प्रकाशन हाउस, मैसूर, 1967.

पुराण (6वीं शताब्दी ई.पू. से 700 ईस्वी):

15. ब्रह्माण्ड पुराण (तृतीय, चतुर्थ शताब्दी ईस्वी) डॉ. चमन लाल गौतम द्वारा दो खंडों में प्रकाशित, संस्कृत संस्थान वेद नगर, बरेली -243 003, 1988

16. गरुड़ पुराण, तेजकुमार बुक डिपो प्राइवेट लिमिटेड लखनऊ -260001 द्वारा प्रकाशित, 1989

17. कर्म पुराण, पं. श्री राम शर्मा संस्कृत संस्थान, वेद नगर, बरेली, द्वारा दो खंडों में संपादित, 1986.

18. लिंग पुराण, उपरोक्त,1987

19. मार्कंडेय पुराण, डॉ. धर्मेंद्रनाथ शास्त्री द्वारा हिंदी में अनूदित, साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ -250 002, प्रथम संस्करण, 1983।

20. मत्स्य पुराण (6वीं शताब्दी ई.पू. से 4 वीं शती ईस्वी), पं. श्री राम शर्मा, वेद नगर, बरेली (यू.पी), द्वारा दो खंड में संपादित, 1989.

21. नारद पुराण, उपरोक्त, 1984.

22. पद्म पुराण, उपरोक्त्, 1986

23. स्कंद पुराण, (7वीं शताब्दी ईस्वी), उपरोक्त 1988.

24. वायु पुराण, राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री द्वारा, हिंदी में अनूदित, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 12, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद, 1987.

25. विष्णु पुराण: उक्त 24 के जैसा,1989.

खगोलीय कार्य:

26. वराहमिहिर द्वारा वृहत्संहिता (550 ईस्वी), पं. द्वारा अच्युत्यानन्द झा द्वारा संपादित और भाष्य। चौखंबा विद्या भवन, वाराणसी -221 001, 1988

27. मयूरचित्रिका (नारदिया), पांडुलिपि नं. 34332, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के सरस्वती भवन पुस्तकालय में रखा गया है ।

28. मेघमाला (लगभग 900 ईस्वी.), पांडुलिपि नं. 37202, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के सरस्वती भवन पुस्तकालय में रखा गया है ।

अन्य:

29. कालीदास के मेघदूतम (100 ई.पू.), मलिनाथ द्वारा भाष्य, डॉ. जय शंकर त्रिपाठी द्वारा संपादित, देवभाषा प्रकाशन, इलाहाबाद -6

30. कालिदास ग्रंथावली: सीताराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1980.

31. सुद्रका की मृच्छकटिका (6वीं शताब्दी ईस्वी), डॉ. श्रीनिवास शास्त्री द्वारा हिंदी में अनूदित, साहित्य भवन, सुभाष बाजार, मेरठ (यूपी), 1980.

32. भव मिश्र (16वीं शताब्दी ईस्वी) द्वारा भावप्रकाश निघंटु, पं. विश्वनाथ द्विवेदी शास्त्री की टीका सहित, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशक, दिल्ली -7, 1988.

बी: माध्यमिक स्रोत:

33. बेकर, बी.एन. और हॉर्टन, आर.ई. (1936). हिस्टोरिकल डैवलपमैन्ट ऑफ आदडिया रिगार्डिंग दि ओरिजन ऑफ स्प्रिंग्स एंड ग्राउंड वाटर, ट्रांस ऑफ अमेरिकन जियोफिजिकल यूनियन, वॉल्यूम 17, पेज 395-400.

34. बिस्वास, ए.के. (1967) हाइड्रोलॉजिकल इंजीनियरिंग 600 बी.सी. से पहले, जर्नल ऑफ हाइड्रोलिक डिवीजन, ए.एस.सी.ई, वॉल्यूम, 93, पेज 115-135.

35. बिस्वास, ए.के. (1969), साइंस इन इंडिया, फ़िरमा के.एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता, पेज 154.

36. बिस्वास, ए.के. (1969), हिस्ट्री ऑफ हाइड्रोलॉजी, नॉर्थ हॉलैंड पब. ii कं, एम्स्टर्डम, लंदन, पेज 336.

37. चाउ, वी.टी. (1964), हैंड बुक ऑफ एप्लाइड हाइड्रोलॉजी मैकग्रू-हिल कंपनी, न्यूयॉर्क।

38. लॉ, बी.सी. (1984), हिस्टोरिकल जयोग्रॉफी आफ एनसिएंट इंडिया, मुंशीराम मनोहरलाल, नयी दिल्ली.

39. पणिक्कर रायमुंडो, (1977), दि वैदिक एक्सपीरियेंस मंत्र-मंजरी मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

40. पारखे, एम.एस. और वसंत, (1989), यज्ञ कृषि, रासयनिक खेती का विकल्प, स्थायी विकास, पत्रिका, नंबर 1, खंड 3, 1989, पेज 9-11.

41. प्रकाश, एस (1965), फाउण्डर्स ऑफ साइंसेज इन एनसिएंट इंडिया, द रिसर्च इंस्टीट्यूट ऑफ एनसिएंट साइंटिफिक स्टडीज, नई दिल्ली।

42. प्रसाद, ई.ए.वी. (1979), वाटर क्वालिटी इन भावमिश्राज भाव प्रकाश, MASSLIT श्रृंखला नं.2, एन.जे. प्रकाशन, तिरुपति

43. प्रसाद, ई.वी. (1980)। ग्राउण्ड वाटर इन वराहमिहिर्स वृहतसंहिता, MASSLIT श्रृंखला नंबर 1, श्री वेंकटेश्वर यूनिवर्सिटी प्रेस, तिरुपति, भारत

44. प्रसाद, वी.टी. बी.एस. कुमार, और एस. कुमार, (1987), वाटर रिसोर्सेज डैवलपमैंट इन इंडिया-इट्स सेन्ट्रल रोल इन दि पास्ट एंड क्रूशियल सिग्निफिकेन्स फॉर फ्यूचर, प्रो0 ऑफ दि इंटरनेशनल सिम्पोजियम ऑन वाटर फॉर फ्यूचर, IAHR, रोम, पेज 19-34.

45. राव, ई.जी.के. कोटेकर, पी.ओ. (1971) एक्सपलोरेशन ऑफ अंडर ग्राउंड वाटर स्प्रिंग्स एकॉर्डिंग टू दि एनसियंट हिंन्दूज, इंडियन जर्नल ऑफ हिस्ट्री ऑफ साइंस, वॉल्यूम 6, नंबर 2, पेज 139-146.

46. सील, बी.डब्ल्यू. (1918) पॉजिटिव साइंस ऑफ एनसिंयट इंडिया, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।

47. सिरकार, डी.सी. (1971)स्टडीज इन दि जियोग्राफी ऑफ एनसिंयट एंड मेडीवल इंडिया, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।

48. श्रीनिवासन, टी.एम. (1970) ए ब्रीफ एकाउंट ऑफ इ एनसियंट ईरीगेशन इंजीरियरिंग सिस्टम्स प्रिवैलेंट इन साउथ इंडिया, इंडियन जर्नल ऑफ हिस्ट्री ऑफ साइंस, वॉल्यूम 5, नंबर 2, पेज 315-325.

49. त्रिपाठी, एम.पी. (1969) डैवलपमैंट ऑफ जियोग्राफिकल नॉलेज इन एनसिंयट इडिया भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी -1, भारत

50. वार्ष्णेय, आर.एस. (1979) इंजीनियरिंग हाइड्रोलॉजी, नेमचंद एंड ब्रदर्स, रुड़की (उ.प्र।)

51. शिरसाथ, पी.बी. (2009), ईरीगेशन डैवलपमैंट इन इंडिया: हिस्ट्री एंड इम्पैक्ट, वाटर टैक्नोलॉजी सैंटर, आईएआरआई, नई दिल्ली, http://indiairrigation.blogspot.com/2009/01/history-of-irrigation- developmentin_01.html

52. मैकक्लेन, III .जे.ई. और डॉर्न, एच. (2006). साइंस एंड टैक्नोलॉजी इन वर्ल्ड हिस्ट्री: एन इन्ट्रोडक्शन IInd एडिशन, दि जॉन्स हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी प्रेस 2715, नॉर्थ चार्ल्स स्ट्रीट, बाल्टीमोर, मैरीलैंड 21218-4363

53. वुओरिनन, एच.एस. जुती, पी.एस., और काटको, टी.एस. (2007), हिस्ट्री ऑफ वाटर एंड हैल्थ फ्रॉम एनसियंट सिविलाइजेशन टु मॉडर्न टाइम्स, वाटर साइंस एंड टैक्नोलॉजी, वाटर सप्लाई वॉल्यूम . 7 नंबर 1 पेज 49-57.

54. यानोपोलोस, एस. आई. लाइबेरटोस, जी. थियोडोसिउ, एन. ली. डब्ल्यू., वैलीपोर, एम. टैम्बुरिनो, ए. और एंजेलकिस, ए.एन. (2015). इवॉलुशन ऑफ वाटर लिफ्टिंग डिवाइसेज (पम्पस) ओवर दि सेच्नुरीज वर्ल्ड वाइड, वाटर 2015, 7, 5031-5060; डोओआई: 10.3390 / w7095031.

55. स्कारबोरो, वी.एल. (2003), दि फ्लो ऑफ पावर :एनसिंयट वाटर सिस्टम्स एंड लैंडस्केप्स : स्कूल ऑफ अमेरिकन रिसर्च प्रेस: सांता फे, एन.एम, यू.एस.ए, पेज 204.

56. ऑटॉल्फ, सी. आर. (2009), वाटर इंजीनियरिंग इन एनसिंयंट वर्ल्ड - ऑक्योलॉजिकल एंड क्लाइमेट पर्सपैक्टिव्स ऑन सोसाइटीज ऑफ एनसियंट साउथ अमेरिका, मिडिल ईस्ट एंड साउथ अमेरिका, मिडिल ईस्ट उंड साउथ ईस्ट साउथ एशिया; ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस: न्यूयॉर्क, एन.वाई, यू.एस.ए, पेज 433.

57. जेरिट्स, ए.एम.जे. (2010), द रोल ऑफ इंटरसैप्शन इन दि हाइड्रोलॉजिकल साइकल । डिजर्टेशन एट द वाटर्स रिसोर्सेज सैक्शन फैकल्टी ऑफ सिविल इंजीनियरिंग एंड जियासाइंसेज, डेल्फ़्ट यूनिवर्सिटी ऑफ टैक्नोलॉजी, एंड एट द गैब्रियल लिप्पमान रिसर्च सेंटर, लक्समबर्ग

58. हॉर्टन, (1933), द रोल ऑफ इन्फिल्ट्रेशन इद दि हाइड्रोलॉजिक साइकल, ट्रांस. अमेर. जियाफिजिक. यूनियन, 14, 446-460।

59. पांडे. ए (2016), सोसायटी एंड एन्वायर्नमैंट इन एनसियंट इंडिया (स्टडी ऑफ हाइड्रोलॉजी) इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंस इन्वेन्शन, वॉल्यूम.5 (2), पेज 26-31.

60. शॉ, जे. सिटक्लिफ, जे. लॉयड-स्मिथ, एल. श्वेनिंगर, जे-एल. और चौहान, एम.एस. (2007) एनसियंट ईरीगेशन एंड बुद्धिष्ट हिस्ट्री इन सेंट्रल इंडिया- ऑप्टिकली स्टिमुलेटेड ल्यूमिनेसीन डेट्स एंड पॉल्लन सीकवेंशेज फ्राम द सांची डैम्स। एशियन पर्सपैक्टिव, वॉल्यूम. 46, नंबर 1.

61. एंजेलिस, ए.एन. और झेंग, एक्स.वाई (2015) इवॉलुशन ऑफ वाटर सप्लाइा, सैनिटेशन, वेस्टवाटर, एंड स्टॉर्म वाटर टैक्नोलॉजीन ग्लोबली । वाटर 2015, 7, 455-463; डीओई: 10.3390 / w7020455।

62. हसन, एफ (2011)। वाटर हिस्ट्री फॉर अवर टाइम्स । पब्लिश्ड बाई दि यूनाइटेड नेशन्स एजुकेशनल, सांइटिफिक एंड कल्चरल ऑर्गेनाइजेशन (यूनेस्को), इंटरनेशनल हाइड्रोलॉजी प्रोग्राम (आईएचपी) 7, प्लेस फोंटेनॉय, 75352 पेरिस 07 एसपी, फ्रांस।

63. ह्यूगो, वी. (1982), लेस मिसरेबल्स, ट्रांस नॉर्मन डेनी. पेंगुइन क्लासिक्स, न्यूयॉर्क, 2001

64. अववनवर, एम.एस. और मणि, एम. ए. (2008). कॉन्सेप्चुअल मॉडल ऑफ पीपुल्स एप्रोच टु सेनिटेशन । साइं. टोटल एन्वा. वॉल्यूम. 390, पेज 1-12

65. सोरिनसेली, पी. (1998). स्टोरिआ सोशल डेली'क्यूक्वा। रीति ई कल्चर। मिलानो: मोंडाडोरी।

66. डी फियो, जी और नेपोली, आर.एम.ए. (2007), हिस्टोरिकल डैव्लपमैंट ऑफ द ऑगस्टान एक्वाडक्ट इन साउर्थ्न

इटली : 20 सैंचरीज ऑफ वर्क्स फ्रॉम सेरिनो टु नेपल्स । वाटर साइंस टैक्नो. वॉल्यूम. 7: 131-8

67. लोफ्रेनो, जी और ब्राउन, जे. (2010), वेस्ट वाटर मैनेजमैंट थ्रो एजेज: ए हिस्ट्री आफ मैनकांड। साइंस ऑफ द टोटल एन्वायर्नमैंट, वॉल्यूम. 408, पेज 5254-5264.

68. मेनेग्लियर, एच. (1994), स्ट्रोरिया डेल्क्क्वा. मिलानो: सूगर कं.

69. तर्र, जे.ए. (1985)। हिस्टोरिकल पर्सपैक्टिव्स ऑन हजार्डियस वेस्ट इन दि यूनाइटेड स्टेट्स। वेस्ट मैनेज.रिस. 3: 95-113

70. वायले, जी. (2000), उन मन्डो हमा ई गेटटा। मिलानो: फेल्ट्रिनेली।

71. सोरी, ई। (2001)। La città e i rifiuti - इकोलोगिया urbana dal Medioevo al primo Novecento। सग्गी, बोलोग्ना: इल मुलिनो।

72. नेरी सर्नेरी, एस (2007)। द कन्स्ट्रक्शन ऑफ द मॉर्डन सिटी एंड द मैनेजमैंट ऑफ वाटर रिसोर्सेज इन इटली 1880-1920। जे. अर्बन हिस्ट. वॉल्यू. 33,पेज 813-27.

73. केनोयर, जे.एम. (1997), ट्रेड एंड टैक्नोलॉजी ऑफ इंडस वैली: न्यू इनसाइट फ्रॉम आर्क्योलॉजी, पाकिस्तान, वर्ल्ड आर्क्योलॉजी 29 (2), 262-280।

74. केनोयर, जे.एम. (1991)। द इंडस वैली ट्रेडिशन ऑफ पाकिस्तान एंड वैस्टर्न इंडिया, जर्न. वर्ल्ड प्रिहिस्ट 5, 331-385.

75. केनोयर, जे.एम. (1998)। एनसियंट सिटीज ऑफ दि इंडस वैली सिविलाईजेशन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ पाकिस्तान स्टडीज: कराची, पाकिस्तान, पेज 1-260.

76. खान, एस (2014)। सैनीटेशन एंड वेस्टवाटर टैक्नोलॉजीज इन हड़प्पा/ इंडस वैली सिविलाईजेशन (ca 2600-1900 बी.सी.) । बुक चैप्टर इन '' इवॉल्युएशन ऑफ सैनीटेशन एंड वेस्टवाटर टैक्नोलॉजीज थ्रो दि सैन्चुरीज'' (एडि. : ए. एन. एंजेलकिस और जे. बी.

रोज), IWA पब्लिशिंग अलायंस हाउस, 12 कैक्सटन स्ट्रीट लंदन SW1H 0QS, यूके, पेज 25-40.

77. वोल्फ, पी. (1999). हिस्ट्री ऑफ वेस्टवाटर । वर्ल्ड ऑफ वाटर 2000- द पास्ट, प्रजेन्ट एंड फ्यूचर । वाटर वर्ल्ड/ वाटर एंड वेस्टवाटर इंटरनेशनल सप्लीमेंट टु पेन वेल मैगजीन , तुलसा, ओएच, यूएसए; 1999।

78. राइट, आर. पी. (2010). द एनसियंट इंडस: अर्बनेज्म, इकॉनॉमी एंड सोसायटी, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 396.

79. फ़ार्डिन, एच. एफ. होले, ए. गौटियर, ई. हौरी, जे. (2013). वेस्ट वाटर मैनेजमैंट टैक्नीक्स फ्रॉम एनसियंट सिविलाइजेशंस टु मॉडर्न एजेज : एक्जाम्पल ऑफ साउथ एशिया वाटर साइंस टैक्नोल. 13, 719-726.

80. किर्क, डब्ल्यू (1975). दि रोल ऑफ इंडिया इन दि डिफ्यूजन ऑफ अर्ली कल्चर्स, द जियोग्राफिकल जर्न. 141 (1), 19-34।

81. मेट, एम.एस. (1969). बिल्डिंग ऑफ एनसियंट इंडिया, वर्ल्ड आर्क्योलॉजी 1 (2), 236-246.

82. सिंह, यू. (2008). हिस्ट्री ऑफ एनसियंट एंड अर्ली मेडीवल इंडिया- फ्रॉम स्टोन एज टु 12th सैंचुरी. पियर्सन एजुकेशन/डोरलिंग किंडरस्ले, नई दिल्ली, पेज 704.

83. कासल, जे.एम. (1949)। लेस फौलीस डे विरापटनम-एरीकेमेडु। कोम्पटेसरेन्डस डेस सेशन्स de l'Acadpmie des insults et Belles-Lettres, 93rd वर्ष, 2, पृष्ठ 142-147।

84. बेगली, वी. (1983). एरिकेमेडू रिकन्सीडर्ड. अमेरिकन जर्नल ऑफ आर्कियोलॉजी 87 (4), 461-481.

85. बेगली, वी. (2004). द डेटिंग ऑफ एरिकेमेडु एंड इट्स बीयरिंग ऑन दि आर्क्योलॉजी ऑफ अर्ली हिस्टोरिकल साउथ इंडिया । इन: साउथ इंडिया होराइजंस (जे. एल. चेलविलार्ड और ई. वाइल्डर, एडि.)। इंस्टीट्यूट फ्रैंच डी पांडिचेरी / इकोल फ्रेंकाइसे डी'एक्स्ट्रमे-ओरिएंट, पॉन्डिचेरी, पेज 513-537।

86. भारद्वाज, एच. सी. (1997). टाउन प्लानिंग, बिल्डिंग एंड बिल्डिंग मटीरियल्स . इन: हिस्ट्री ऑफ टैक्नोलॉजी इन इंडिया । (ए.के. बाग, एडि.)। इंडियन नेशनल साइंस एकेडेमी, नई दिल्ली, वॉल्यूम। 1, पेज 498-523.

87. नायर, के.एस. (2004) रोल ऑफ वाटर इन द डैवलपमैंट ऑफ सिविलाइजेशन इन इंडिया- ए रिव्यू ऑफ एनसियंट लिटरेचर, ट्रेडिशनल प्रैक्टिसेज एंड बिलीफ्स। द बेसिस ऑफ सिविलाइजेशन - वाटर साइंस ? (प्रोसीडिंग ऑफ द यूनेस्को / आईएएचएस / आईडब्ल्यूआई (ए सिम्पोजियम हैल्ड इन रोम दिसंबर 2003)। आईएएचएस पब्लि. 286

88. बागची, के.एस. और बागची, एस.एस. (1991) हिस्ट्री ऑफ ईरीगेशन इन इंडिया । पार्ट । : ईरीगेशन इन एनसियंट इंडिया । (फ्रॉम 2295 बी.सी. अप टु 11th सैंचुरी)। ईरीगेशन एंड पावर. पेज 69-76

89. श्रीनिवासन, टी. एम. (1976)। मेजरमैंट ऑफ रेनफाल इन एनसियंट इंडिया, आई जे एच एस 11.2, 148-57।

90. शॉ, जे. और सिटक्लिफ, जे. (2003) वाटर मैनेजमैंट, पैट्रोनेज नेटवर्क्स एंड रिलीजियस चैंज : न्यू इवीडैन्स फ्रॉम दि सांची डैम कॉम्प्लेक्स एंड काउंटरपार्ट्स इन गुजरात एंड श्रीलंका, साउथ एशियन स्टडीज, 19: 1, 73-104, डीओआई: 10.1080 / 02666030.2003.9628622।

91. कीलहॉर्न, एफ. (1906). ''जूनागढ़ रॉक्स इन्सक्रिप्शन्स ऑफ रुद्रादमन: द ईयर 72", एपिग्राफिका इंडिका VIII, पेज 36-49

92. शॉ, जे. और सुतक्लिफ, जे. (2001) एनसियंट ईरीगेशन वर्क्स इन द सांची एरिया: एन आर्क्योलॉजिकल एंड हाइड्रोलॉजिकल इन्वेस्टिगेशन, साउथ एशियन स्टडीज 17: 1, 55-75, डीओआई: 10.1080/ 02666030.2001.9628592।

93. सुटक्लिफ, जे. शॉ, जे. और ब्राउन, ई. हिस्टोरिकल वाटर रिसोर्सेज इन साउथ एशिया : द हाइड्रोलॉजिकल बैकग्राउंड, हाइड्रोलॉजिकल साइंसेज जर्नल, 56 (5): 775-88।

94. जिनसेन एम. (1985). मोहेनजो-दाड़ो, सिटी ऑफ द इंडस वैली, एंडेवर, न्यू सिरीज. वॉल्यूम 9, नंबर 4, पेरगामन प्रेस, प्रिंटेड इन द ग्रेट ब्रिटेन, लंदन, यूके ।

95. जिनसेन एम. (1989). वाटर सप्लाई एंड सीवेज डिस्पोजल एट मोहनजो-दाड़ो, वर्ल्ड आर्कियोलॉजी 21 (2), 177-192.

96. मजूमदार, पी.पी. और जैन, एस. (2018). हाइड्रोलॉजी इन एनसियंट इंडिया : सम फैस्सीनेटिंग फैक्ट्स. जियोफिजिकल रिसर्च एबस्ट्रैक्ट्स, ईजीयू जनरल ऐसेम्बली, वॉल्यूम. 20, ईजीयू 2018, 8690

97. नायर, के.एस. (2004) । रोल ऑफ वाटर इन दि डैवलपमैंट ऑफ सिविलाइजेशन इन इंडिया- ए रिव्यू ऑफ एनसियंट लिटरेचर, ट्रेडिशनल प्रैक्टिसेल एंड बिलीफ्स, द बेसिस ऑफ सिविलाइजेशन- वाटर साइंस ? (प्रोसीडिंग ऑफ द यूनेस्को / आईएएचएस / आईडब्ल्यूएचए, ए सिम्पोजियम हैल्ड इन रोम दिसंबर 2003), आईएएचएस पब्लि. 286.

प्रथम संस्करण का अध्ययन दल

सतीश चंद्र	:	निदेशक
टी. एम. त्रिपाठी	:	वैज्ञानिक-बी
वी. के. श्रीवास्तव	:	प्रलेखन कर्मचारी

द्वितीय संस्करण के संपादकगण

शरद कुमार जैन	:	निदेशक
ए. के. लोहनी	:	वैज्ञानिक-जी
एस. डी. खोब्रागड़े	:	वैज्ञानिक-एफ
डॉ. मनोहर अरोड़ा	:	वैज्ञानिक-डी
पी. के. सिंह	:	वैज्ञानिक-डी
मु. फुरकान उल्लाह	:	सहायक पुस्त. एवं सूचना अधिकारी
प्रदीप कुमार उनियाल	:	वरिष्ठ अनुवादक
चारु पाण्डेय	:	पुस्तकालय एवं सूचना सहायक
नरेश कुमार	:	रिसोर्स परसन

मोहनजोदड़ो का महान स्नान घर

आपो हिष्टा मयोभुवः

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की

जलविज्ञान भवन, रुड़की–247667 (उत्तराखंड), भारत

ई–मेल : director.nihr@gov.in दूरभाष : +91-1332-272106 फैक्स : +91-1332-272123

वेब : http://nihroorkee.gov.in

printed at: ganpati print & pack, roorkee # 9997024708